आशुतोष मुकर्जी

ए. पी. दास गुप्ता

अनुवाद

जे. वी. रमण

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

पहला संस्करण 1986 (शक 1907)
पाचवी आवृति 1989 (शक 1911)

Original Title: Aashutosh Mukherjee
Hindi Translation: Aashutosh Mukherjee

रु. 9.50

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित

राष्ट्रीय जीवन चरित माला

आशुतोष मुकर्जी

उन. लक्ष्यों और उद्देश्यों का वर्णन किया था जिन्हें उच्च शिक्षा द्वारा इस देश की जनता प्राप्त कर सकेगी। उन्होंने ऐसे चार उद्देश्य स्पष्ट किए जो कि इस देश के लोग शिक्षा के मार्ग पर चल कर हासिल कर सकते थे—पहला, राष्ट्रीय एकता का एक नया आधार, दूसरा, पूर्व की संस्थाओं का बुद्धिसंगत ज्ञान, तीसरा, स्वशासन या भारतीयो के लिए भारत की सरकार और चौथा, वर्तमान और भविष्य में विश्व के सामान्य बुद्धिजीवी आंदोलनों में भाग लेना। आशुतोष मुकर्जी द्वारा अपने आपको शिक्षा की सेवा में समर्पित करने और कलकत्ता विश्वविद्यालय के मामलो मे मार्ग दर्शन करने का काम संभालने का उद्देश्य इन्ही लक्ष्यों की प्राप्ति था।

इस जीवन कथा से स्पष्ट हो जायेगा कि आशुतोष मुकर्जी उच्चतम कोटि के देशभक्त थे। 19वी शताब्दी के महानतम् शिक्षा शास्त्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के साथ 20वीं शताब्दी के महानतम शिक्षाशास्त्री आशुतोष मुकर्जी आधुनिक भारत के सबसे महत्त्वपूर्ण निर्माताओं मे से एक के रूप मे उभरते हैं। वास्तव में वे अपने समय के महानतम् भारतीयों में से एक थे। उनके बहुमुखी, तेजस्वी और देशभक्ति से परिपूर्ण जीवन का प्रत्येक अंग हमारे राष्ट्रीय इतिहास का एक शानदार हिस्सा है।

महान् बौद्धिक क्षमता, विस्तृत ज्ञान, आश्चर्यजनक कार्य-शक्ति, असीमित कार्य-सामर्थ्य और प्रबल चरित्र से सम्पन्न आशुतोष एक ऐसा चमत्कार थे जो बहुत कम देखने में आता है।

भूमिका

उन्नीसवीं शताब्दी भारत के इतिहास में दिग्गजों का युग था। शताब्दी के प्रत्येक दशक ने महान व्यक्ति पैदा किए, जिनके द्वारा विभिन्न कार्यक्षेत्रों में किये गए भगीरथ प्रयत्नो से नये भारत का जन्म हुआ। पिछली शताब्दी के छठे दशक ने शताब्दी के कुछ अत्यंत उल्लेखनीय व्यक्तियों को जन्म दिया। रवीन्द्रनाथ टैगोर और मोतीलाल नेहरू 1861 में पैदा हुए, स्वामी विवेकानंद 1863 में, 1864 में आशुतोष मुकर्जी, जी. के. गोखले 1866 में और महात्मा गांधी 1869 में। आशुतोष मुकर्जी ने राजनीति में कम हिस्सा लिया। फिर भी नये भारत के निर्माण में उनका योगदान कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वकील, विधिवेत्ता, न्यायाधीश तथा विधायक सभी रूपों में समान रूप से महान, उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में कठिन परिश्रम किया तथा शिक्षा के माध्यम से एक सामाजिक क्रांति पैदा की और भारत को लोकतंत्रिक पद्धति चलाने के लिए तैयार किया। उन्हें यह मालूम था कि राजनीतिक क्षेत्र में काम करने वाले लोगो का परिश्रम कुछ समय बाद भारत को विश्व के महानतम् लोकतन्त्रों में से एक बना देगा। अंग्रेजों ने प्रशासन में अधिक से अधिक संख्या में भारतीयो को शामिल करना आरंभ कर दिया था। विधान मंडलों में जनता के प्रतिनिधि आने लगे थे। 1909 का मार्ले-मिंटो सुधार अपने आप में छोटा होते हुए इस दिशा में एक अच्छा कदम था। लेकिन तैयारी कहां थी ? यदि जनता को स्वयं अपना भाग्य-विधाता बनना था तो उन्हें अपने नये उत्तरदायित्व के लिए शिक्षित करना आवश्यक था।

प्रजातंत्र को ठीक से चलाने के लिए शिक्षित मतदाताओ की जरूरत थी। 1922 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह मे अपने भाषण में सर आशुतोष ने कहा, "—मैं एक प्रभावशाली तत्त्व की अनदेखी नहीं करता हूं—प्रजातंत्र का आगमन। राजनीतिक संस्थाओ के इतिहास और दर्शन के एक गंभीर अध्येता का कहना है कि लोकतंत्र की कमजोरिया शिक्षा के अवसरो की कमी के कारण है। अनभिज्ञ और अप्रबुद्ध लोकतंत्र का एक बड़ा दोष जनता के सभी वर्गों

को विस्तृत तौर पर शिक्षा प्रदान करने की परम आवश्यकता के प्रति उदासीनता है और यह शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह इस कमजोरी को पहचाने और प्रदत्त ज्ञान से नये लोकतंत्र मे शिक्षा के अवसरों के विस्तार के लिए काम करे।''

आशुतोष मुकर्जी के प्रयासो के परिणामस्वरूप कलकत्ता विश्वविद्यालय के अधिकार-क्षेत्र में आने वाले स्कूलों और कालेजों में, जो कि उन दिनो उत्तर भारत के एक बड़े हिस्से तक फैले हुए थे, कुशलता में वृद्धि हुई और बेहतर शिक्षा प्रदान की जाने लगी। काफी संख्या में विद्यार्थी विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने लगे और हज़ारों कुशल स्नातक कलकत्ता विश्वविद्यालय से निकल कर अपना उपार्जित ज्ञान भारत के सभी भागो में अपने कम भाग्यशाली भाइयो तक पहुंचाने के लिए जाने लगे। इस प्रकार भारत नये लोकतंत्र को चलाने के लिए तैयार किया गया।

आशुताष की नीति की सफलता सैडलर आयोग ने भी स्वीकार की, जिसने कहा, ''हाल के वर्षों में विश्वविद्यालय में खेतिहर वर्गों से भी बढती हुई संख्या में प्रवेश शुरू हो गया है—खेतिहर वर्गो के एक छोटे से हिस्से में भी शिक्षा प्राप्त करने की आकांक्षा पैदा होना बंगाल के सामाजिक इतिहास मे बहुत बडे महत्त्व की घटना है।'' यह सामाजिक क्रांति का अग्रदूत हो सकता है।

आशुतोष ने भारत को एक नये किस्म का विश्वविद्यालय दिया जो नालंदा के दिनों के बाद से इस देश के लिए अनजाना था। यह एक ऐसा आदर्श था जिसे अपनाने के लिए अन्य भारतीय विश्वविद्यालय उत्सुक थे। आशुतोष के हाथों मे कलकत्ता विश्वविद्यालय अध्यापन और शोध से सम्बन्धित एक महान् विश्व-विद्यालय—ज्ञान के प्रचार का एक महान अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र बन गया। विश्व के सभी भागो से आये विद्वानो की वाणी इस महान् अध्यापन और शोध विश्व-विद्यालय के प्राध्यापन-कक्षो में सुनाई देती थी। गभीर विद्वान् मानव-शास्त्र और विज्ञान के विभिन्न विषयों में शोध कर रहे थे और मानव ज्ञान की सीमाओ को आगे बढ़ा रहे थे। भारत में अब बिलकुल सही अर्थो मे एक विश्वविद्यालय था और भारत विश्व के विकसित देशो की पंक्ति में खड़ा हो सकता था।

राष्ट्रीय एकीकरण के लिए किसी भी तरह का नियोजित उपाय किये जाने से बहुत पहले ही आशुतोष अपने विश्वविद्यालय के सास्कृतिक कार्यकलापो के माध्यम से इस लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय भारत के सभी भागों से भर्ती किये गये अध्यापको का एक समुदाय बन गया। यहां की कक्षाओं में भारत की सभी भाषाएं पढ़ाई जाती थी। इन सभी भाषाओ मे विकास के आरंभिक चरण से आधुनिक काल तक के साहित्य के प्रतिनिधिक अंश चुनकर पुस्तकें तैयार करने और प्रकाशित करने की एक परियोजना शुरू की गई।

भारतीय विश्वविद्यालयों के संस्थापन के कुछ वर्षों बाद दिये गये भाषण में मद्रास के गवर्नर और उस प्रात के विश्वविद्यालय के कुलाधिपति लार्ड नेजियर ने

विषय-सूची

आभारोक्ति

सबसे पहले मैं नेशनल बुक ट्रस्ट का धन्यवाद करना चाहूंगा जिन्होंने मुझे यह संक्षिप्त जीवनचरित लिखने का निमंत्रण दिया। किसी भी जीवनी-लेखक के लिए अपने विषय के साथ निकट जान-पहचान सदैव लाभदायक होती है। परंतु मैं ऐसा कोई दावा नही कर सकता। मेरे और सर आशुतोष के बीच आयु और महत्ता के अंतर ने श्रद्धावश मुझे उनसे कुछ दूर ही रखा। परतु मैंने बचपन में उन्हे अपने घर में देखा, क्योंकि वे मेरे पिता प्रो० जे. एन. दासगुप्ता के अच्छे मित्र थे। मेरे पिता कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कालेज में थे और 1921 मे अपनी मृत्यु तक कलकत्ता विश्वविद्यालय की सिनेट और सिंडीकेट के लगभग 25 वर्ष तक सदस्य होने के नाते उस महान कार्य मे सर आशुतोष के सहयोगी थे जो कि सर आशुतोष विश्वविद्यालय के लिए कर रहे थे। हम निरतर सर आशुतोष के कार्यकलापो की चर्चा सुनते थे। मैंने उन्हे तब देखा जब 1917 में सैडलर आयोग के अन्य सदस्यो के साथ वे हेर स्कूल, कलकत्ता में हमारी कक्षा में आये। अपने विद्यार्थी जीवन में मैंने उन्हें विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोहों को संबोधित करते हुए और विश्वविद्यालय के सिनेट हॉल में सार्वजनिक व्याख्यानो की अध्यक्षता करते हुए देखा है। विश्वविद्यालय के सिनेट की बैठको और दीक्षान्त समारोहो में उनके जोशीले भाषणों ने हमे प्रेरणा दी और उनके लिए हमारी श्रद्धा को जागृत किया। जब मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय मे अध्यापक और प्रशासक के रूप में कार्यरत था तो मैं एक ऐसी सस्था की सेवा कर रहा था जहां सर आशुतोष की परंपरा अब भी जीवित थी।

लंबी अवधि से मेरी यह इच्छा रही है कि मैं सर आशुतोष का जीवनचरित लिख सकूं तथा जितना मैं उन्हें जानता था वो पूरा-पूरा बता सकूं और इसी कारण नेशनल बुक ट्रस्ट का निमत्रण अत्यत-स्वागत योग्य था। मुझे दिये गये सीमित स्थान मे सर आशुतोष के महान व्यक्तित्व का जितना संपूर्ण चित्रण करना संभव था उतना मैंने करने का प्रयास किया है। इसके बावजूद सर आशुतोष पर विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता रह जाती है।

सर आशुतोष का पहला संपूर्ण जीवनचरित, जो कि संक्षिप्त था, प्रो० एन. के. सिन्हा द्वारा लिखा गया था। यह पुस्तक मेरे लिए अत्यंत उपयोगी रही है। प्रो० सिन्हा ने भारत सरकार के गृह विभाग की कार्यवाहियों में सर आशुतोष के उल्लेखों को ढूंढ़ निकाल कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। सर आशुतोष के बारे में श्री शशधर सिन्हा का वृत्तांत भी एक अच्छा अध्ययन है। सर आशुतोष से संबंधित प्रो० दिनेश चन्द्र सेन के संस्मरणो में काफी महत्त्वपूर्ण सामग्री शामिल की गई है। जानकारी का एक अन्य स्रोत हैं सर आशुतोष के भाषण और लेख। इस समय यह विभिन्न स्थानो में बिखरे हुए हैं, इन्हें इकट्ठा कर तुरंत प्रकाशित किया जाना चाहिए। बंगाल की विद्वत् संस्थाओं की कार्यवाहियों में उनके योगदान के बारे में तब तक पूरी जानकारी प्राप्त नहीं हो सकती जब तक कि इन समितियो के पुराने दस्तावेजों के अध्ययन का गंभीर प्रयास नहीं किया जाता। अनेक खंडो में सर आशुतोष मुकर्जी के पूरे जीवनचरित को प्रकाशित करना एक लाभप्रद कार्य होगा और इसे शीघ्र आरंभ किया जाना चाहिए। मैं "हंड्रेड ईयर्ज़ ऑफ द यूनिवर्सिटी ऑफ कैलकटा" में तीन उत्कृष्ट अध्यायों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं, जिनमें से पहला डा० अनिलचन्द्र बैनर्जी ने, दूसरा प्रो० टी. चक्रवर्ती ने और तीसरा प्रो० पी. एन. बैनर्जी ने लिखा है।

मैं सर आशुतोष के ज्येष्ठ पुत्र श्री राम प्रसाद मुकर्जी का आभारी हूं जिन्होंने मेरी सहायता की और मुझे प्रोत्साहित किया।

कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय के श्री सी. आर. बैनर्जी, इडियन एसोसियेशन फॉर द कल्टिवेशन ऑफ साइंस के निदेशक श्री एस. एन. सेन, बंगाल संस्कृत एसोसिएशन के सचिव डॉ० ए. सी. बनर्जी और मेरे दो युवा मित्रो श्री पंकज दत्ता और जनाब मोहम्मद इकबाल से मैंने जो सहायता प्राप्त की है, उसके लिए मै उनका धन्यवाद करता हूं।

—ए. पी. दासगुप्ता

1

आरंभिक जीवन

आशुतोष का सबंध एक ऐसे परिवार से था जिसने संस्कृत के अनेक प्रतिष्ठित विद्वानो को जन्म दिया है। उनके कई पूर्वजो ने बगला साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान किया। आशुतोष के पूर्वज राम मुकर्जी नरसिंह ओझा के भाई थे जो प्रख्यात कीर्तिवश ओझा के, जिन्होने रामायण का बंगला में अनुवाद किया था, परदादा था। राजनैतिक परिवर्तन के कारण नरसिंह ओझा ने पूर्वी बंगाल में सोनारगांव में अपने पिता का मकान छोड़ दिया और वर्तमान पश्चिम बगाल राज्य के नादिया जिले मे शातिपुर के पास फुलिया में बस गये। अशुतोष के दादा विश्वनाथ का पालन-पोषण पश्चिम बगाल हुगली जिले में जीरत में उनके मामा के घर हुआ था। वे इसी गांव मे बस गये और तभी से यह स्थान उनके वंश का निवास स्थान बन गया है। आशुतोष के दादा के भाई रामचन्द्र तारकालंकार कलकत्ता के संस्कृत कालेज के जाने-माने प्रोफेसर थे। रामचन्द्र के पुत्र नवगोपाल भी संस्कृत कालेज मे शिक्षक थे। अशुतोष के दादा विश्वनाथ ने नदी के रास्ते कलना से रंगपुर तक अपनी यात्रा के बारे में बंगला में एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक ने एक ऐसे समय सरल बगला गद्य शैली का उदाहरण प्रस्तुत किया जब बंगला गद्य अभी जन्म ले रहा था। आशुतोष के चाचा दुर्गाप्रसाद को भी कई पुरानी बंगला कृतियाँ कंठस्थ थीं। एक और चाचा हरीप्रसाद भी बगला में गद्य और पद्य लिखते थे। उनकी पुस्तक 'विचित्र बंगचित्र' 1887 में प्रकाशित हुई थी। 1861 में आशुतोष के पिता गगाप्रसाद कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज से बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। इसके बाद कुछ समय के लिए उन्होंने कानून का अध्ययन किया। लेकिन इसी बीच उन्होंने मैडिकल कालेज में प्रवेश लेने का फैसला किया। 1866 में वे पास हुए। गगाप्रसाद ने 1862 मे

जगततारिणी देवी से विवाह किया और 29 जून, 1864 को कलकत्ता के बो बाजार में मलगा लेन के एक मकान मे आशुतोष का जन्म हुआ। उस समय उनके पिता मैडिकल कालेज मे छात्र ही थे।

गंगा प्रसाद ने मैडिकल कालेज के छात्र के रूप मे जबर्दस्त योग्यता दिखाई और प्रसूति-विद्या मे पदक जीता। यहा पर गगाप्रसाद के आरभिक जीवन की एक ऐसी घटना का वर्णन करना रोचक होगा जिससे पता चलता है कि आशुतोष ने स्वाभिमान का प्रबल भाव कहां से प्राप्त किया। गगाप्रसाद के मैडिकल कालेज से पास हो जाने के बाद कालेज के प्रिंसिपल ने वाइसराय के सैनिक सचिव से सिफारिश की कि गंगाप्रसाद को वाइसराय के प्रशासनिक सगठन मे डाक्टर के रूप में अशकालिक नौकरी दी जाये। सैनिक सचिव ने गगाप्रसाद का इंटरव्यू लिया और अगले दिन से कार्य आरभ करने को कहा। लेकिन साथ ही उन्होने गंगाप्रसाद को ढग से कपड़े पहन कर आने की हिदायत दी। गगाप्रसाद कोट, धोती और जूते पहने हुए थे। उनसे पतलून पहन कर आने को कहा गया। गंगाप्रसाद वापस प्रिंसिपल के पास गये और उन्हें बताया कि हालाकि सैनिक सचिव ने सद्भाव के साथ उनका स्वागत किया, लेकिन उन्हें एक अच्छे डाक्टर को नहीं बल्कि केवल एक अच्छे पतलून की आवश्यकता है। अत उन्होंने नौकरी के प्रस्ताव को स्वीकार न करने का फैसला किया है। यद्यपि उनकी आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी, लेकिन फिर भी उन्होंने कहा कि वे स्वतंत्र रूप से अपनी निजी प्रेक्टिस करेंगे।

भवानीपुर में उन दिनो उस जमाने के बहुत से विख्यात बगालियो का निवास था। गंगाप्रसाद ने वहीं पर प्रेक्टिस शुरू करने का फैसला किया। शीघ्र ही उनकी प्रेक्टिस खूब जम गई और उन्होने 1872 मे रूसा रोड पर मकान बनवा लिया। विद्या की ओर झुकाव ने उन्हें चिकित्सा विज्ञान पर पुस्तक लिखने को प्रेरित किया। उनकी 'प्रेक्टिस आफ मेडिसन' नामक पुस्तक सुप्रसिद्ध है। उन्होंने शरीर रचना विज्ञान पर भी एक पुस्तक लिखी और माताओं के लिए बंगला मे 'मातृ शिक्षा' नामक पुस्तक की रचना की। गगाप्रसाद की विविध क्षेत्रों में रुचि थी और उन्होंने चिकित्सा के अलावा कई अलग-अलग विषयो की पुस्तको का अध्ययन किया। उन्हें अंग्रेजी की बहुत-सी कविताए कठस्थ थी जो वे अपने पुत्र आशुतोष को सुनाया करते थे। इसी कारण स्कूल के छोटे से विद्यार्थी होते हुए भी आशुतोष को मिल्टन के 'पेरेडाइज लोस्ट' का पूरा प्रथम सर्ग, 'प्लेजर्स आफ होप' और बहुत-सी अन्य अग्रेजी कविताए जबानी याद थी। आशुतोष के साथ सुबह की सैर को जाते हुए वे महापुरुषों के जीवन और कार्यों की चर्चा करते थे। अपने बेटे में ज्ञान के प्रति जबर्दस्त आकर्षण को देखते हुए उन्होंने अपना घर बालक के लिए उपयुक्त पुस्तको से भर दिया। गगा प्रसाद ने अपने बेटे

मे महापुरुष बनने के सभी गुण पाये। अतः वे बालक का सही तरह से पालन-पोषण करने के भरसक प्रयास में लग गये।

आशुतोष की आरम्भिक स्कूली शिक्षा कलकत्ता मे भवानीपुर के चक्रबेरिया स्कूल मे हुई। दस वर्ष की आयु में वे गंभीर रूप से बीमार पड़े, जिसमे कुछ समय के लिए उनकी पढ़ाई मे बाधा आई। उन्हें जलवायु बदलने के लिए मथुरा भेज दिया गया। कलकता लौटने पर वे भवानीपुर के साउथ सबर्बन स्कूल में भर्ती हो गये। यह बात 1876 की है जब उनकी आयु 12 वर्ष की थी। विख्यात लेखक, समाज सुधारक, शिक्षा शास्त्री और प्रचारक पडित शिवनाथ शास्त्री उस स्कूल के हेडमास्टर थे। आशुतोष को घर पर मधुसुदन दास पढ़ाते थे जो बाद में उड़ीसा में एक लोकप्रिय नेता के रूप में उभरे।

आशुतोष ने 1869 मे कलकत्ता विश्वविद्यलय की एंट्रेंस परीक्षा पास की जिसमें उन्हे विश्वविद्यालय में द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। इसके बाद उन्होंने कलकत्ता के प्रेसीडेसी कालेज मे प्रवेश लिया। उनके सहपाठियों में नरेन्द्रनाथ दत्त भी थे जिन्होंने बाद में स्वामी विवेकानद के नाम से प्रसिद्धि पाई। आशुतोष अपने साथी विद्यार्थियों से बहुत आगे थे। जिस समय वे एफ० ए० के ही विद्यार्थी थे, तब भी उन्हें चासर और गणित की उच्च स्तर की पुस्तकें पढ़ते हुआ देखा जा सकता था। उनकी संगठन शक्ति के बारे में उस समय पता लगा, जब उन्होंने प्रेसीडेंसी कालेज के गणित के प्रोफेसर डा० ह्यू मेकान के लिए, जिनकी अचानक मृत्यु हो गई थी, एक स्मारक समिति का गठन किया। आशुतोष ने चदा जमा किया और प्रेसीडेंसी कालेज के पुस्तकालय कक्ष में उनकी याद में संगमरमर की एक पट्टी लगाई। इस पट्टी के अनावरण के अवसर पर शुद्ध अंग्रेजी में उनके भावपूर्ण भाषण की श्रोताओं ने खूब प्रशंसा की। कालेज को वाद-विवाद समिति मे भी वे प्रमुख थे, और यहीं उन्होंने अपनी वाद-विवाद की क्षमता और विचारों की तर्कसंगत अभिव्यक्ति तथा भाषण-शैली की शुद्धता का विकास किया। 1881 मे भारी शारीरिक कष्ट की स्थिति में वे प्रथम कला परीक्षा में बैठे। उन्हें सिरदर्द की पुरानी शिकायत थी। इसके अलावा वे तभी जाकर लिख पाये जब उनके दाये हाथ को बिजली का झटका दिया गया। इसके बावजूद सफल परीक्षार्थियो में उन्होंने तीसरा स्थान पाया।

मई 1883 में एक ऐसा विरल संयोग हुआ जब आशुतोष ने प्रेसीडेसी कालेज मे छात्र होते हुए भी राजनीतिक प्रदर्शन में भाग लिया। यह अवसर उन्हे प्रसिद्ध राष्ट्रवादी नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के खिलाफ अदालत के अपमान के प्रसिद्ध मुकदमे के दौरान प्राप्त हुआ। अपने अंग्रेजी दैनिक 'द बंगाली' में सुरेन्द्रनाथ ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री नारिस द्वारा एक हिन्दू परिवार के आराध्य देव को अदालत मे पेश किये जाने की आज्ञा देने और इस प्रकार हिन्दूओं की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुचाने की कड़ी आलोचना की। उन पर अदालत का अपमान

करने का आरोप लगाया गया और 5 मई, 1883 को उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ द्वारा मामले पर विचार किए जाने के बाद उन्हें कैद की सजा दी गई। इस दृश्य का सुरेन्द्रनाथ ने अपने ही शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया : 'छात्र समुदाय भारी संख्या मे एकत्रित हुआ और उनमें मैने ऐसे लोगों को भी देखा जिन्होने (बाद में) साम्राज्य (ब्रिटिश) के सेवको के रूप में उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त की सज़ा सुनाये जाने के बाद खिड़कियां तोड़कर और पुलिस पर पत्थर बरसा कर उन्होंने प्रदर्शन में उसी ढग से हिस्सा लिया जो कि विश्व भर के नवयुवकों में प्रचलित है। इन उपद्रवी नवयुवको में से एक आशुतोष था—'[1]

आशुतोष ने बी. ए. की परीक्षा के लिए 'ए' पाठ्यक्रम चुना। उस ज़माने में ऑनर्स पाठ्यक्रम नही था। उन्होंने जो विषय लिए वे थे अंग्रेज़ी, गणित, संस्कृत और दर्शन।

1889 में आशुतोष बी. ए की परीक्षा में विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान लेकर सफल हुए और उन्हें एशन और विजयनगरम छात्रवृत्तियां और हरिश्चन्द्र पुरस्कार प्रदान किया गया। उसी वर्ष वे लंदन मैथमेटिकल सौसाइटी के फैलो भी बने। 1885 मे गणित की एम ए परीक्षा मे भी उन्होंने सफल परीक्षार्थियों मे चोटी का स्थान प्राप्त किया। 1884 और 1885 में अपने-अपने दीक्षांत भाषणों में उप-कुलपतियो ने आशुतोष का विशेष उल्लेख किया। 1886 में उन्हे विश्वविद्यालय के विशेष अलंकरण प्रेमचन्द छात्रवृति से सम्मानित किया गया जिसे प्राप्त करने के लिए सभी उत्सुक होते थे और उसी वर्ष उन्होने भौतिकी में एम. ए. की एक और डिग्री प्राप्त की। इस प्रकार वे इस विश्वविद्यालय में दो विषयों में एम. ए. की डिग्री प्राप्त करने वाले पहले छात्र हुए। यद्यपि प्रधानत उनकी रुचि गणित और भौतिकी में थी लेकिन इतिहास, अंग्रेजी साहित्य और दर्शनशास्त्र में भी उनके ज्ञान को सामान्य नही कहा जा सकता था। उन्होने अगले वर्ष विश्वविद्यालय के अधिकारियों को कला संकाय के इन तीन विषयों में फिर से परीक्षा देने की अनुमति के लिए आवेदन दिया। उन्हें अनुमति नही दी गई।

1887 में आशुतोष को गणित में एम. ए. की परीक्षा के लिए परीक्षक नियुक्त किया गया और 1891 तक उन्होंने यह कार्य किया। इस प्रकार उन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालय में एक महत्वपूर्ण विषय से सम्बन्वित सर्वोच्च परीक्षा में पहले भारतीय परीक्षक होने का श्रेय प्राप्त किया। इससे पूर्व एम. ए. की परीक्षाओ में केवल यूरोपीय लोगों को ही परीक्षक नियुक्त किया जाता था। केवल संस्कृत, अरबी और फारसी इसके अपवाद थे, क्योंकि इन विषयों से सम्बन्धित यूरोपीय विद्वान उपलब्ध नही थे।

1. एस. एन. बनर्जी—'ए नेशन इन मेकिंग', पृष्ठ 71, 1963 संस्करण।

आशुतोष ने 1885 में कानूनशास्त्र का अध्ययन आरंभ किया। 1888 में उन्होंने बी० एल० की परीक्षा पास की सिटी कालेज कलकत्ता के कानून शास्त्र के विद्यार्थी होने के नाते वे सुप्रसिद्ध वकील सत्येन्द्र प्रसन्न सिन्हा के छात्र थे जिन्होने बाद में रायपुर के सामंत सिन्हा के नाम से ब्रिटेन के हाउस आफ लार्ड्स में स्थान ग्रहण किया।

अपने विद्यार्थी जीवन में कानून के अध्ययन के प्रति आशुतोष की गहरी रुचि का इस बात से पता चलता है कि वे टैगौर कानून शास्त्र भाषणमाला में लगातार तीन वर्ष तक उपस्थित रहे और भाषणो से संबंधित विषय में योग्यता के लिए उन्हें स्वर्ण पदक प्रदान किया गया।

ऊपर बताये गये किस्म की उपलब्धियां बहुत से अन्य विद्यार्थियों ने भी प्राप्त की होंगी परंतु आशुतोष को उन्ही में से एक नहीं माना जा सकता। उनमें विशिष्टता थी और उनकी प्रतिभा किशोर-अवस्था से ही व्यक्त होने लगी थी। उस जमाने में जब शोध करना भारत में अनजानी बात थी, प्रेसीडेंसी कालेज का यह युवा छात्र भारत और विदेशों की विदत्तापूर्ण पत्रिकाओं में चौंकाने वाले लेख प्रकाशित कर रहा था। उस समय जबकि वे प्रेसीडेंसी कालेज में सिर्फ एफ० ए० के विद्यार्थी थे, उन्होने एक लेख लिखा जिसमें उन्होंने यूक्लिड की प्रथम पुस्तक के 25 वें साध्य का एक नया प्रमाण प्रस्तुत किया। 1881 में इसे केम्ब्रिज के 'मेसेजर आफ मेथमेटिक्स' में प्रकाशित किया गया। वास्तव में उन्होंने यह लेख उस समय लिखा था जब वे स्कूल में थे और ऐंट्रेंस की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। 1883 में प्रेसीडेंसी कालेज में उनके गणित के शिक्षक प्रोफेसर बूथ के आग्रह पर इसे प्रकाशित किया गया था। बी० ए० की डिग्री प्राप्त करने से भी पहले वे गणित पर अपना दूसरा लेख 'मेसेंजर आफ मेथमेटिक्स' में छपवा चुके थे। यह लेख 'सेल्मन के प्रमेय के कुछ विस्तारण के बारे में था। अपनी एम० ए० की डिग्री लेने से भी पूर्व उन्होंने गणित पर अपना तीसरा लेख 'क्वार्टरली जर्नल आफ प्योर एण्ड एप्लाइड मेथमेटिक्स' (1886) में प्रकाशित करवा लिया था। यह 'एलिप्टिक फलन पर एक टिप्पणी' थी जो कि अद्वितीय योग्यता से परिपूर्ण थी और सुप्रसिद्ध गणितज्ञो ने भी इस बात को स्वीकार करते हुए लेख की तारीफ की। इस लेख का नेपर के 'एलिप्टिश फंकश्नेन' में उल्लेख किया गया है। एम. ए. की डिग्री प्राप्त करने के कुछ ही समय बाद आशुतोष ने 'जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' में 'अवकल समीकरण के प्रक्षेप-पथ विषय पर' एक लेख प्रकाशित किया। इटली के गणितज्ञ मेनार्डी द्वारा दिया गया सनाभि दीर्घवृत्त तिर्यक प्रक्षेप-पथ (Obhque trajectory of Confocal ellipses) के समीकरणो का हल अत्यंत जटिल था और आशुतोष ने दिखा दिया कि मेनार्डी के हल के स्थान पर साधारण समीकरणों के युग्म का प्रयोग किया जा सकता है। 1887 में उन्होंने एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल की पत्रिका में 'मांज

के सभी शांखवो के अवकल समीकरण पर 'एक लेख प्रकाशित किया। इन लेखों की यूरोप के गणितज्ञो में खूब चर्चा और प्रशंसा हुई। गणित के क्षेत्र मे शोध में रुचि रखने वाले विद्वान् 1887 और 1890 के बीच युवा आशुतोष द्वारा जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल में प्रकाशित लेखों को पढकर लाभान्वित हो सकते है। 25 वर्ष की आयु से पूर्व ही उन्होने गणित संबंधी शोध की दुनिया मे अपना सिक्का जमा लिया था। सुप्रसिद्ध गणितज्ञ प्रोफेसर गणेश प्रसाद ने लिखा, "सर—आशुतोष ने गणित के ज्ञान में बिना किसी सहयोग के अपने ही प्रयत्नो से उस समय योगदान किया जब वे मात्र कालेज के छात्र थे। भास्कर के बाद खगोल विज्ञान से हटकर अलग से गणित में शोध के क्षेत्र में प्रवेश करने वाले वे पहले भारतीय थे और उनका बहुत कुछ कार्य मौलिक था।" 1893 में आशुतोष ने ज्यामितीय शाकव परआरंभिक पाठ्य-पुस्तक प्रकाशित की। यह पुस्तक विद्यार्थियों में बहुत लोकप्रिय हुई और इसके कई संस्करण निकले। 1885 में उस समय जबकि उन्होंने एम. ए. की परीक्षा पास की, वे लंदन के रायल एस्ट्रोनामिकल सोसाइटी के फेलो बने और अगले वर्ष वे रायल सोसाइटी आफ इडिनबरा के फेलो तथा कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी के सदस्य बन गये।

1890 में वे सिसली के मेथमेटिकल सोसाइटी आफ पलेर्मो के सदस्य बने।

उनके बारे मे भारत सरकार के गृह सचिव एच. एच. रिसले ने 1906 में कहा, "अपने विषय विशुद्ध गणित में उनकी यूरोप में ख्याति है और उनके मौलिक शोध के परिणामों को उनके नाम के साथ कैम्ब्रिज की स्तरीय पाठ्य-पुस्तकों मे शामिल किया गया है।"

अनेक वर्षों तक उनकी राय कलकत्ता विश्वविद्यालय के मामलो में और उन सभी विद्वत्तापूर्ण समितियों और संस्थाओं में निर्णायक थी। जिनके वे सदस्य या अध्यक्ष थे। यह बड़ी रोचक बात है कि उनके विद्यार्थी जीवन में ही एक बार ऐसा अवसर आया जब कलकत्ता विश्वविद्यालय में उनकी राय मानी गई। उन्होने अपनी युक्ति-सगत दलीलों से प्रेमचन्द,राय चन्द छात्रवृत्तियों से संबधित नियमो में परिवर्तन करने के एक प्रस्ताव को बेकार कर दिया। प्रस्ताव यह था कि विज्ञान मे जिन लोगों को छात्रवृत्तियां दी जायेंगी, उन्हें इंगलैंड में अतर्राष्ट्रीय ख्याति के विशिष्ट शिक्षकों की देखरेख में तीन वर्ग व्यतीत करने होंगे। आशुतोष ने प्रस्ताव के विरोध में समाचारपत्रों में लिखा और विश्वविद्यालय के सभी अधि-सदस्यों को परिपत्र भी भेजा। उन्होने अपने तर्कों से सिद्ध कर दिया कि प्रस्ताव से ऐसे रूढ़िवादी परिवारों से संबंधित सफल विद्यार्थी छात्रवृत्ति का लाभ उठाने से वंचित रह जायेंगे जो अपने बेटों को विदेश भेजने को तैयार नही है। यही नहीं छात्रवृत्ति की राशि भी तीन वर्षों तक इंगलैंड में विद्यार्थी के भरण-पोषण के लिए अपर्याप्त थी। अत: निर्धन परंतु प्रतिभावान छात्र छात्रवृत्ति से फायदा नहीं उठा पायेगे। ऐसे विद्यार्थी

जो इंगलैंड जाने की स्थिति में हों और जो वहां तीन वर्ष तक अपना ख़र्च भी चला सकते हों, वे भी स्वदेश लौटकर हतोत्साहित हो जायेंगे, क्योंकि उन्हें देश में शोध कार्य को चालू रखने के लिए पर्याप्त रूप से सुसज्जित प्रयोगशालाएं नहीं मिलेंगी। वे इस कारण भी कुंठित होंगे कि शिक्षा के क्षेत्र में सभी उच्चतर ओहदे यूरोपीयों के लिए आरक्षित है। विश्वविद्यालय के अधि-सदस्यों ने इन तर्कों को इतना सही पाया कि इस पुरस्कार के साथ नई शर्तों को जोड़ने का प्रस्ताव छोड़ दिया गया।

2

अदालत और न्यायपीठ में

मनुष्य के मामले हमेशा भाग्य के हाथों ही तय होते हैं। आशुतोष की पहली पसंद स्पष्ट रूप से शिक्षण और शोधकार्य ही थी। शिक्षण के पेशे में शामिल होने की संभावना 1887 में उत्पन्न हुई। सार्वजनिक शिक्षा के निदेशक सर एल्फ्रेड क्राफ्ट ने आशुतोष के सामने कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में नियुक्ति का प्रस्ताव रखा। आशुतोष चाहते थे कि उनका कलकत्ता से तबादला न हो क्योंकि ऐसी व्यवस्था में उन्हें शोध कार्य बंद करना पड़ता। इसके अलावा वे शिक्षा सेवा के यूरोपीय सदस्यों जितना वेतन और वैसा ही ओहदा चाहते थे। क्राफ्ट ने उनकी दूसरी शर्त को असंभव बताया। आशुतोष ने स्पष्ट शब्दो में काफ्ट से कहा कि उन्होंने नौकरी के लिए स्वयं आवेदन नहीं दिया था और वे प्रस्तावित पद केवल सम्मानजनक शर्तों पर ही स्वीकार करेंगे। उनके प्रबल आत्म-सम्मान को इससे चोट पहुंची और उन्होंने क्राफ्ट से कह दिया कि वे अदालत से संबद्ध होना अधिक पसद करेंगे। 1887 में भारतीय विज्ञान संवर्धन संस्था (इंडियन ऐसोसिएशन फार द कल्टिवेशन आफ साईस) के संस्थापक डा० महेन्द्र लाल सरकार के निमंत्रण पर आशुतोष ने संस्था में व्याख्यान देना आरंभ किया। इन व्याख्यानों से लाभ उठाने के लिए एम. ए. की परीक्षा की तैयारी कर रहे विद्यार्थी आया करते थे, जिनमें प्रेसीडेंसी कालेज के छात्र भी शामिल थे। वे संस्थान में 1891 तक व्याख्यान करते रहे, जब अपनी वकालत शुरू करने के कारण उन्हें यह कार्य बंद करना पड़ा। महेन्द्रलाल सरकार द्वारा संपन्न वेतनमान वाला प्रोफेसर का एक रिक्त स्थान बनाने के लिए धन जुटाने के प्रयत्न असफल रहे। यदि ऐसा न होता तो कानूनी पेशा और न्याय-पालिका तो उनकी प्रतिभा के लाभ से वंचित रह जाते, परंतु गणित-भौतिकी की एक नई शाखा की अवश्य स्थापना होती। प्रशिक्षण काल के दौरान आशुतोष ने

प्रख्यात वकील रासबिहारी घोष के साथ काम किया। अगस्त 1888 में वे कलकत्ता उच्च न्यायालय के वकील के तौर पर भर्ती किये गये। शिक्षक और शोधकर्त्ता का जीवन अपनाने का अंतिम अवसर उन्हे तब प्राप्त हुआ जब सर गुरूदास बनर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति (1890-92) थे, क्योंकि सर गुरूदास ने उनके लिए गणित के प्रोफेसर का पद बनाने का भरसक प्रयास किया। परंतु वे असफल रहे। इसके बाद आशुतोष गंभीरता से वकालत में लग गये।

आशुतोष ने 1886 में कृष्णानगर में पंडित रामनारायण भट्टाचार्जी की पुत्री जोगमाया के साथ विवाह किया। 1887 में उनके छोटे भाई हेमन्त कुमार की मृत्यु हो गई। 1889 में आशुतोष के पिता का देहांत हो गया। अब उनके लिए गणित में शोध से अधिक अपने पेशे के बारे में सोचना आवश्यक हो गया।

आशुतोष ने अपने पेशे में बहुत तेजी से तरक्की की। 1892 तक वे वकालत में काफी अच्छी तरह जम चुके थे और तब हम उन्हे भारतीय संस्था में अपने व्याख्यान जारी रखने में भी असमर्थ पाते हैं। अपनी वकालत में उन्होंने परिश्रम करने की अपनी असाधारण क्षमता, आश्चर्यजनक स्मरण शक्ति और उच्च विद्वत्ता तथा विश्लेषणपरक बुद्धि का प्रयोग किया जिससे कि वे हमेशा मुकदमे के प्रधान सूत्रों को पकड़ लेते थे। उन्हें अपने पेशे मे अच्छी तरह जमने में बहुत कम समय लगा। आशुतोष सुप्रसिद्ध गणितज्ञ से सुप्रसिद्ध वकील बन जाने का एक और उदाहरण बने। गणित और कानून शास्त्र में एक ही तरह के गुणों की आवश्कता होती है—बौद्धिक तौर पर स्पष्टता और तार्किक क्षमता—जो आशुतोष में बहुतायत में विद्यमान थी। पेशे में रासबिहारी घोष से प्राप्त प्रशिक्षण भी उनके लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ।

परंतु अपने को धन कमाने की एक मशीन में बदलने को प्रेरित नहीं हो सके। पांडित्य में उनकी अभिरुचि उन्हें कानून शास्त्र के अथाह ज्ञान सागर की ओर ले गई। 1894 में उन्होंने कानून शास्त्र में डाक्टरेट हासिल की। 1898 में 'टैगोर ला प्रोफेसर' के स्थान पर उनकी नियुक्ति कर कानूनवेत्ता के रूप में उनकी प्रतिष्ठा को मान्यता प्रदान की गई। उन्होने जिस विषय पर भाषण दिया वह था 'ब्रिटिश शासन के दौरान भारत मे स्थायी अधिकार कानून'। उन्होने बारह व्याख्यानो में इस विषय का अपने स्वभाव के अनुरूप सम्पूर्णता से विवेचन किया। यह व्याख्यान-माला कानून के क्षेत्र में उनकी शोध क्षमता का प्रमाण है।

1904 में, जब आशुतोष की आयु मुश्किल से 40 वर्ष की थी, उन्हें कलकत्ता उच्चन्यायालय में न्यायाधीश नियुक्त किया गया। 6 जून, 1904 को उन्होंने कार्य-भार संभाला और कुछ ही महीनो में उनका नाम खूब चमकने लगा।

1908 में आठ महीनों के छोटे से अवकाश को छोड़कर, जिस दौरान वे डेप्युटेशन पर विश्वविद्यालय के कार्य में लगे हुए थे, वे 19 वर्ष तक पीठासीन रहे और

अपनी मृत्यु से कुछ माह पूर्व अवकाश ग्रहण किया। 1920 में कुछ समय के लिए वे कायवाहक मुख्य न्यायाधीश भी रहे थे। उनके ऐसे फैसलों की संख्या, जिनकी कानून पत्रिकाओं में चर्चा की गई, दो हजार पांच सौ से अधिक है। यह संख्या महान न्यायधीश सर बार्न्स पीकाक के चर्चित फैसलों से दुगनी है। यह फैसले कानून शास्त्र के प्रत्येक प्रसग से सम्बन्धित है। कठिन परिश्रम करने की असीमित क्षमता से सम्पन्न, वे प्रत्येक मामले पर गहराई से विचार करते, उस विषय पर विद्यमान कानून का विश्लेषण करते, मामले से सम्बन्धित विभिन्न विषयो पर भारत और विदेश की सभी न्यायालयों के फैसलो का अध्ययन करते, प्रमुख मुद्दो को पकड़ते और मामले से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओ पर ऐसा फैसला करते जिनका कोई जवाब नही होता।

"हिन्दू कानून से सम्बन्धित प्रश्नो पर उनके निर्णय मौलिक स्रोतों के प्रति सूक्ष्म शोध की ऐसी प्रवृत्ति प्रदर्शित करते है जो हाल के फैसलो में मुश्किल से ही पाई जाती है। ऐसे मामलो में निर्णय लेते समय वे इस बात का हमेशा ध्यान रखते थे कि फैसले उन दिशाओ के अनुरूप हो जिनका एक हिन्दू अदालत अनुसरण करती।" खूब लाल बनाम अयोध्या (22 सी. एल. जे. 345) के मुकदमे में अपने फैसले में उन्होने रघुनंदन के जलस्वर्गतत्व और हेमाद्री के चतुर्बुर्ग चितामणि जैसे मौलिक स्रोतो का सहारा लिया और "कानूनी आवश्यकता के प्रति वैसा ही विस्तृत दृष्टि-कोण अपनाया जैसाकि एक हिन्दू अदालत लेती।" देबी भगत बनाम गोलब भोगत आई. एल. आर. 40 कलकत्ता 721) के मुकदमे मे उनका फैसला, जिस पर उनका सर गुरूदास बनर्जी जैसे विख्यात हिन्दू विधिवेत्ता के विचारों से मतभेद था, उत्कृष्ट था। जब ऐसा ही मुद्दा प्रिवी काउंसिल के विचाराधीन एक मामले में उठाया गया तो उसका फैसला करते हुए लार्ड डनेडिन ने उपरोक्त मुकदमे मे जस्टिस मुकर्जी के निर्णय का उल्लेख किया और उस सुबुद्ध और कुशल निर्णय से प्राप्त सहायता को स्वीकार किया।

बधक कानून उनके फैसलो से बहुत समृद्ध हुआ। हकीमलाल बनाम रामलाल (6 सी. एल. जे. 46) का मुकदमा "साम्य, न्याय और शुद्ध अंतःकरण के सिद्धांतो पर आधारित कर प्रतिस्थापित प्रतिभूति के सिद्धांत की सुबोध व्याख्या के लिए असाधारण है। सुरजीराम मारवाड़ी बनाम ब्रह्मदेव (2 सी. एल. जे. 288) और गुरूदास सिंह बनाम चन्द्रिका सिंह (5 सी. एल. जे 611) के मुकदमें प्रत्यासन सिद्धांत के श्रेष्ठ विश्लेषण के लिए विशिष्ट हैं।" प्राचीन और आधुनिक कानून शास्त्र से अवगत होने के कारण उन्हे सिद्धात के मूल तत्वो और विशेषता को प्रदर्शित करने में कोई कठिनाई नही हुई जिसकी वजह से प्रत्यासन के सेनिग्री (Saingry of Subrogation) का खिताब प्राप्त हुआ।

आशुतोष ने अपने प्रत्येक फैसले को उन सभी मामलों से जुड़ा एक ऐसा खजाना

बनाने का प्रयत्न किया जिनका विचाराधीन प्रश्न के साथ किसी भी तरह का संबंध होने की सभावना होती। इस उद्देश्य से उन्होने कानून की लगभग सभी आधुनिक पद्धतियों का ज्ञान अर्जित किया। उन्होने अमरीकी न्यायाधीशों के फैसलों पर अपना ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित किया, क्योकि उनका विचार था कि संयुक्त राज्य अमरीका का सामाजिक और औद्योगिक विकास, जिसका अप्रत्यक्ष रूप से कानूनऔरन्यायव्यवस्था पर प्रभाव पड़ा, यूरोप के किसी देश से कही आगे था। "उनका विचार था कि यह मात्र पूर्वधारणा और रूढिवादी विचार थे, उभरती हुई सामाजिक आवश्यकताओ और संबंधों की अनदेखी करना था जिसके कारण सामान्य सिद्धांतों के इस उपयोगी स्रोत का इस्तेमाल नही किया जा रहा था।"

उन्होने उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र शक्ति पर रोक लगाने के किसी भी प्रयास की कभी भी अनुमति नहीं दी। "उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण शक्तियों पर अंकुश लगाये जाने पर भी वे न्यायोचित मौकों पर हस्तक्षेप करते रहने से नही रुके, क्योकि वे न्यायाधीश थे जो अधिकार पत्र के अंतर्गत दी गई सभी शक्तियो का स्वतंत्रता से प्रयोग करता है। अत: इस्माईल बनाम शमशेर रहमान् (आई. एल. आर. 41 कलकत्ता 436) के मुकदमे में जब यह तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय को अस्थायी व्यादेश को बर्खास्त करने के सिलसिले में की गई अपील पर दिये गये आदेश मे हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है, तो उन्होंने यह कहा : "प्रस्तुत की गई आपत्ति से हम बाध्य नही होते हैं क्योंकि अधिकार पत्र अधिनियम की धारा 15 के अंतर्गत यह अदालत हस्तक्षेप करने में स्पष्ट रूप से सक्षम है : और प्रतिवादी पक्ष के व्यवहार को देखते हुए, जो कि वास्तव में अदालत के प्राधिकार की अवज्ञा है, हमारा यह मत है कि यह ऐसा मामला है जहां हमारे हस्तक्षेप को न्यायसंगत मानने का विस्तृत आधार बन जाता है।"

चाहे दीवानी विधि का प्रशासन हो या फौजदारी कानून का, वे दोनो में एक से महान न्यायधीश थे। वे 40 वर्ष की आयु से 59 वर्ष की आयु तक पीठासीन रहे परन्तु न्यायाधीश के पद पर अपने लंबे कार्यकाल के दौरान अपने फैसलों में वे कभी भी उस ऊंचे स्तर से विचलित नहीं हुए जो उन्होने जीवन के सर्वोत्तम वर्षों में अपने लिए निर्धारित किये थे।

जब वे एक युवा न्यायाधीश थे, उन्होने अपने एक सहयोगी श्री जस्टिस रामपीनी से कहा था कि जब उनकी कार्यक्षमता कम हो जायेगी तो वे पीठ सबधी अपना कार्य जारी रखना नही चाहेंगे। युवावस्था मे उन्होने जो बात कही थी उस पर वे 59 वर्ष की आयु तक डटे रहे। अवकाश ग्रहण करने की वास्तविक तारीख से 6 महीने पहले ही उन्होने अवकाश ले लेने का फैसला किया क्योकि उनका विचार था कि अपने स्वास्थ्य के कारण अपनी जिम्मेदारियों को वे संतोषजनक ढग से निभाने में समर्थ नही होंगे। 1923 में उनकी बेटी की, जो उन्हें बहुत प्रिय थी, मृत्यु हुई जो उनके

लिए गहरा आघात था। इसके अलावा, रेक्स बनाम बरिन्द्र कुमार घोष के मामले (38 सी. एल. जे. 411) की सुनवाई और उसके जबर्दस्त निर्णय को लिखने में उनका स्वास्थ्य क्षीण हो गया। अतः उन्होने महसूस किया कि उन्ह अवकाश ले लेना चाहिए और जनवरी 1924 को उन्होंने यही किया।

उनको विदाई देते हुए एडवोकेट जनरल ने कहा, "पीठ पर शानदार कार्यकाल के अलावा आपने एक समान भद्र व्यवहार, संकोची लोगो की तत्काल प्रशंसा और सतत प्रोत्साहन से वकील समुदाय का सम्मान और स्नेह अर्जित किया है। आपकी अदालत में, जहां सही कानून को अच्छी तरह लागू किया जाता था, कभी कोई कम अनुभव वाला वकील लज्जित नहीं हुआ। निर्णीत मुकदमो की भूल-भुलैया में आप हमेशा इंसाफ की मशाल को ऊंचा उठाये स्थिर क़दमों से चलते रहे।" प्रधान न्यायाधीश सर लैंसलाट सेंडरसन ने कहा, "वे एक ही आकांक्षा से प्रेरित हुए हैं, यानी अदालत की महान परम्पराओं को बनाये रखना और उसकी सभी शाखाओं में न्यायकरण को बढ़ावा देना। उनका महान ज्ञान, उनकी आश्चर्यजनक स्मरण शक्ति और उनका अनथक परिश्रम लगभग बीस वर्ष से इसी उद्देश्य को समर्पित रहे हैं। अदालत में ही नही बल्कि बंगाल में भी उनका विशिष्ट व्यक्तित्व है और मेरे विचार से मेरा यह कहना उचित होगा कि सारे भारत में उनका नाम जाना जाता है और उनका प्रभाव महसूस किया गया है।" अपने उत्तर में सर आशुतोष ने कहा, मैंने अदालत के अधिकार क्षेत्र पर रोक लगाने प्रयत्नो को कभी पसंद नहीं किया है और इंसाफ के मंदिर के दरवाज़े सभी के लिए समान रूप से पूरी तरह खुले रखने का प्रयास किया है ताकि हर ऐसे वादकारी का मामला जो सही या गलत, यह धारणा रखता है कि उसकी कोई शिकायत है, सरसरी तौर पर खारिज न हो और उसे अपने मामले के मुद्दों को सर्वोच्च न्यायाधिकरण—देश मे अपील की अंतिम अदालत के सामने पूरी तरह पेश करने के पर्याप्त अवसर मिलें। आदर्श न्यायिक प्रशासन, सहनशीलता के साथ सुनना, सचेत विचार करना, सही समझना और न्यायपूर्ण फैसला करना मेरी महत्त्वाकांक्षा रही है।

3

आशुतोष और कलकत्ता विश्वविद्यालय (1889-1906)

1876 में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने वेल्स के राजकुमार एडवर्ड को, जो बाद में राजा एडवर्ड सप्तम बने, मानद उपाधि प्रदान करने के लिए विशेष दीक्षांत समारोह का आयोजन किया। आशुतोष को, जो उस समय बारह वर्ष के बालक थे, उनके पिता ब्रिटेन के राजसिंहासन के उत्तराधिकारी की झलक दिखाने दीक्षांत समारोह में ले गये। देश के गण्यमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में हुए उस भव्य औपचारिक समारोह का उनके मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। यह संभव है कि इसी दृश्य ने उनमें इस महान संस्था का सदस्य बनने की महत्वाकांक्षा जागृत की। उन्होंने कहा—"मेरी हमेशा यह आकांक्षा रही कि मुझे कुछ करने की अनुमति दी जाये—कुछ ऐसा कार्य जिससे, जैसा कि मैं अपने तरुण सपनों में सोच कर खुश होता था, मेरे विश्वविद्यालय को लाभ हो और उसकी प्रतिष्ठा बढ़े।" विद्यार्थी जीवन के दौरान अवकाश के समय वे अक्सर विश्वविद्यालय की विभिन्न निकायों की कार्यवाहियों की रिपोर्टों को ध्यानपूर्वक पढ़ते पाये जाते, जोकि उन्हें उनके चाचा राधिका प्रसाद के सीनेट के सदस्य होने के कारण मिल जाते थे। 1884 में विश्वविद्यालय की बहुत-सी कार्यवाहियों की सूचियां और विवरण नीलाम में बेचे जा रहे थे। किसी ने इसकी परवाह तक न की। लेकिन आशुतोष सामने आये। उन्होंने सब कुछ खरीद लिया, उसे घर ले गये और बड़े ध्यान से उनका अध्ययन किया। कुलपति सर कुर्टनि इलबर्ट ने आशुतोष के शैक्षिक जीवन को प्रशंसा भरी निगाह से देखा था और 1885 के अपने दीक्षांत भाषण में उनकी खूब प्रशंसा की थी। शैक्षिक जीवन की समाप्ति पर इलबर्ट ने आशुतोष से पूछा कि वे उनके लिए क्या कर सकते है। आशुतोष अच्छी सरकारी नौकरी मांग सकते थे। लेकिन बजाय इसके उन्होंने एक अवैतनिक पद मांगा। उन्होंने कहा कि वे सीनेट के सदस्य बनना चाहते हैं। इलबर्ट

कुलाधिपति लार्ड लैंसडाउन से उनके बारे में बात की और सरकार ने आशुतोष को 16 जनवरी, 1889 से कलकत्ता विश्वविद्यालय का फैलो मनोनीत किया।

उनकी नियुक्ति से संबंधित औपचारिक पत्र में कहा गया था, "वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के अब तक के सबसे ज्यादा विख्यात गणितज्ञ है और इस क्षेत्र में उन्होंने काफी कुछ मौलिक कार्य किया है।इस कारण उन्हें ब्रिटेन की एक-दो विद्वत् सोसाइटियों की सदस्यता भी प्राप्त हुई है। वे ऐशियाटिक सोसाइटी के सदस्य है या रहे थे और उस सस्था के समक्ष पढ़े गये उनके निबंधों ने बहुतों का ध्यान आकर्षित किया है।"[1] सीनेट के लिए मनोनीत किये.जाने के कुछ ही महीनों बाद, वे सिंडीकेट के लिए निर्वाचित हुए। आशुतोष अब अपनी पसंद के क्षेत्र में कार्यरत थे। आरंभ से ही उन्होंने अपने आपको विश्वविद्यालय के कार्यों मे पूरी तरह लीन कर दिया। सीनेट और सिंडीकेट की तथा ऐसे सभी निकायों की जिनके वे सदस्य थे प्रत्येक बैठक में वे उपस्थित रहते थे। विश्वविद्यालय के विभिन्न अंगों की पुरानी कार्य-वाहियों की पूरी जानकारी, जो उन्होने उनके विवरण के अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त की थी, इन विचार-विमर्शों में बहुत सहायक सिद्ध होती और उन्हें अन्य सदस्यो की अपेक्षा बेहतर साबित करती।

1891 में अपने दीक्षांत भाषण में कुलपति के रूप में गुरूदास बनर्जी ने पाठ्य-क्रमों में देशी भाषाओं को शामिल करने और उन्हें विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में अनिवार्य विषय बनाने का प्रश्न उठाया। यहां पर यह आवश्यक है कि उस समय विभिन्न कक्षाओं के पाठ्यक्रमों में देशी भाषाओं के स्थान का वर्णन किया जाये। कलकत्ता विश्वविद्यालय के शुरू के नियमों के अनुसार भारतीय भाषाएं ऐच्छिक थीं। एन्ट्रेन्स और बी. ए. की परीक्षाओ मे उन्हे भारतीय भाषाओं के स्थान पर लिया.जा सकता था। एफ. ए. की परीक्षाओं के प्रारंभ किये जाने पर भी स्थिति यही थी। 1864 में नियमों में संशोधन किये जाने पर स्वदेशी भाषाएं एफ. ए. और बी. ए. की परीक्षा के विषयों के तौर पर हट गईं,लेकिन एन्ट्रेन्स में अतिरिक्त भाषाओं की सूची में उनका स्थान बना रहा। 1878 में आधुनिक भारतीय भाषाओं ने एफ. ए. और बी. ए. के पाठ्यक्रम में चोर-दरवाजे से पुन. प्रवेश किया। केवल महिला परीक्षार्थियों को ही इस बात की अनुमति दी गई कि वे अतिरिक्त भाषा के तौर पर भारतीय भाषा के स्थान पर कोई अन्य विषय लें। गुरूदास बनर्जी ने कहा, "मैं इसे केवल वांछनीय ही नहीं बल्कि आवश्यक भी समझता हूं कि हमें ऐसी भारतीय भाषाओं के अध्ययन को, जिनका अपना साहित्य है, उनसे संबंधित प्राचीन भाषाओ के साथ संयुक्तरूप से परीक्षाओ में अनिवार्य विषय बनाकर प्रोत्साहित करना चाहिए। बंगला भाषा का साहित्य अब इतना समृद्ध है कि सर्वथा अध्ययन

1. एन. के. सिन्हा—आशुतोष मुकर्जी, पृ० 58।

के योग्य है, और उर्दू तथा हिंदी भी काफी अच्छी तरह इसी दिशा की ओर बढ़ रही है—"मेरा यह दृढ विश्वास है कि जब तक हमारी अपनी भाषाओं के द्वारा ज्ञान का प्रसार नहीं किया जाता, हम एक राष्ट्र का दर्जा नहीं पा सकते।" इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आशुतोष ने 14 मार्च, 1891 को सिंडीकेट मे प्रस्ताव किया :

(1) "कि कला परीक्षाओं मे जो परीक्षार्थी संस्कृत लेते है उनकी बंगला, हिन्दी या उड़िया की भी परीक्षा ली जानी चाहिए और जो फारसी या अरबी लेते है उनकी उर्दू में भी परीक्षा लेनी चाहिए।

(2) कि उपरोक्त प्रस्ताव को निम्न पद्धति से लागू किया जाना चाहिए, यानी—

(अ) एफ. ए. की परीक्षा में :

(1) ऊपर बताई गई प्राचीन भाषाओं के लिए पाठ्य-पुस्तकें निर्धारित करने के अतिक्ति इनसे संबंधित उपरोक्त देशी भाषाओं में भी पाठ्य-पुस्तके निर्वारित की जाएं।

(2) प्रथम पेपर प्राचीन भाषा के बारे में होना चाहिए और दूसरे पेपर में देशी भाषा के निर्धारित पाठ्य-पुस्तकों के प्रश्न और उस भाषा में एक मौलिक निबंध हों।

(ब) बी. ए. की परीक्षा में :

(1) उपरोक्त प्राचीन भाषाओ के लिए पाठ्य-पुस्तके निर्धारित करने के अतिरिक्त इनसे सबंधित उपरोक्त देशी भाषाओ में भी पाठ्य-पुस्तकें निर्धारित की जाएं।

(2) पास पेपर में वही पद्धति अपनायी जाये जो एफ. ए. परीक्षा के लिए निश्चित है।

(3) ऑनर्स के प्रश्नपत्रों में गद्य और पद्य से संबंधित तीसरे पेपर के स्थान पर एक ऐसा पेपर तैयार किया जाये। जिसमें देशी भाषाओं की पाठ्य-पुस्तकों और देशी भाषाओं में में मौलिक निबंधो के बारे मे प्रश्न हो।

(स) एम. ए. की परीक्षा में :

एम. ए. के नियमों के अनुच्छेद पाच द्वारा अपेक्षित अंग्रेजी निबंध की एम. ए. परीक्षा में परीक्षार्थियो को उपरोक्त देशी भाषाओं में से किसी एक में उनके द्वारा चुनी गई प्राचीन अथवा देशी भाषा के इतिहास या साहित्य से संबंधित किसी विषय पर निबंध लिखने को कहा जाये।"

इन प्रस्तावों को कला संकाय को भेजा गया जिसने 11 जुलाई, 1981 को इन पर बहस की। सर्वश्री उमेशचन्द दत्त, बंकिम चंद्र चटर्जी, चन्द्रनाथ बसु, महेन्द्रनाथ राय, के. एम, मेक्डानल्ड, आनंद मोहन बसु तथा हरप्रसाद शास्त्री प्रस्ताव के पक्ष में बोले। राजा पियारीमोहन मुकर्जी, मौलवी सिराजुल इस्लाम, कर्नल जेरट, नवाब अब्दुल लतीफ, श्री रजनीनाथ राय, श्री नीलमणि मुकर्जी और श्री महेश चन्द्र न्यायरत्न ने प्रस्ताव के खिलाफ भाषण दिए। प्रस्ताव को मतदान के लिए प्रस्तुत किया गया और 17 के मुकाबले 11 वोटों के बहुमत से रद्द कर दिया गया।

इस हार से निराश न होकर आशुतोष ने 20 जुलाई 1891 को सिडीकेट की एक बैठक में फिर प्रस्ताव रखा : "कि सीनेट सिंडीकेट को सिफारिश करे कि एक समिति नियुक्त की जाये जो ऐसे उपाय ढूंढे जिनसे भारतीय भाषाओं के अध्ययन को विश्वविद्यालय और अधिक प्रोत्साहन दे सके।" सिडीकेट ने फैसला किया कि वह इस अनुरोध को स्वीकार नहीं कर सकती।

आशुतोष के प्रयासों से किस प्रकार विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में भारतीय भाषाओं को आखिरकार उचित स्थान प्राप्त हुआ यह इस वृत्तांत के दौरान धीरे-धीरे स्पष्ट होगा। विश्वविद्यालय के सामने उस समय सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न था उसके पुनर्गठन का। 1857 के अधिनियम मे, जिसके अंतर्गत कलकत्ता विश्वविद्यालय की स्थापना की गई थी, विश्वविद्यालय के बारे मे अत्यंत सीमित परिकल्पना थी। इसके आमुख में कहा गया था कि : "यह निश्चय किया गया है कि कलकत्ता मे एक विश्वविद्यालय की स्थापना की जाये जिसके उद्देश्य होंगे परीक्षा के माध्यम से, उन व्यक्तियों का पता लगाना जिन्होंने साहित्य, विज्ञान और कला की विभिन्न शाखाओ मे योग्यता प्राप्त की हो और "उन्हें शैक्षिक उपाधियो से सम्मानित करना—।" इस प्रकार विश्वविद्यालय का स्वरूप केवल परीक्षा लेने वाली एक संस्था जैसा ही होना था। अध्यापन संबंधी उसके कोई कार्य नहीं थे। स्कूल और कालिज विश्वविद्यालय के अंग नहीं थे। विश्वविद्यालय परीक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित करती थी और पाठ्य-पुस्तकों के नाम बताती थी। स्कूलों और कालिजो को यह बताने के अलावा कि वे किन पाठ्यक्रमो का अनुसरण करें और परीक्षाओं में कौन-कौन सी पाठ्य-पुस्तकें होंगी, विश्वविद्यालय का शिक्षा संस्थानों के साथ कोई संबंध नहीं था। सीनेट के सदस्यों का नाम अधिनियम में ही दे दिया गया था और यह नियुक्ति उनके जीवनकाल तक थी। देश में शिक्षित लोग इस किस्म के विश्वविद्यालय से संतुष्ट रहे, यह आशा नहीं की जा सकती थी और 1857 के अधिनियम के संशोधन का प्रश्न 1890 में ही विश्वविद्यालय द्वारा सक्रिय रूप से सोच-विचार के लिए चुन लिया गया था। अप्रैल 1890 में इस विषय पर विचार करने के लिए सीनेट द्वारा एक समिति नियुक्त की गई। समिति ने सुझाव दिया कि आमुख में उपयुक्त सुधार किये जायें ताकि विश्वविद्यालय शिक्षा की

उन्नति से सबंधित अन्य कार्य भी अपने हाथो में ले सके। समिति ने यह भी सिफारिश की कि विश्वविद्यालय के सभी फेलोज में से, जिनकी संख्या कुलाधिपति द्वारा निश्चित की जानी चाहिए, 50 प्रतिशत कुलाधिपति द्वारा मनोनीत किये जाने चाहिए और बाकी मे से दो-तिहाई सीनेट द्वारा तथा एक-तिहाई स्नातकों द्वारा निर्वाचित किये जाने चाहिए। समिति की सिफारिशो को सीनेट द्वारा स्वीकार कर लिया गया परंतु भारत सरकार ने प्रस्ताव को इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि यह संशोधन अत्यंत आवश्यक किस्म के नही हैं। 1893 में सीनेट ने इस मामले पर पुनः विचार किया और "भारत सरकार से अधिनियम के संशोधन के लिए प्रस्तुत किये गये प्रस्ताव पर शीघ्र विचार करने का सादर अनुरोध" करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया। ऐसा प्रतीत होता है कि लार्ड कर्जन के आने तक इस विषय में आगे कोई कार्यवाही नही की गई। लार्ड कर्जन आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के स्नातक थे और उनके लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय की कमजोरियो को समझना सरल था जो कि आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के अध्यापन और आवासीय विश्वविद्यालयों की तुलना में केवल एक परीक्षा लेने वाला विश्वविद्यालय ही था। 1899 में कुलाधिपति के रूप मे अपने पहले भाषण में उन्होंने कहा कि अपनी कमजोरियों के बावजूद कलकत्ता विश्वविद्यालय उपयोगी कार्य कर रहा है, और हालांकि वर्तमान पद्धति दोषपूर्ण है और उसमे सुधार की गुजाइश भी है, लेकिन फिर भी इस तरह का सुधार सावधानी से किया जाना चाहिए, "अंधाधुंध पुनर्निर्माण हमारा आदर्श नहीं होना चाहिए।" उन्होंने वायदा किया कि "इस देश की समूची शिक्षा पद्धति पर मेरे कार्यकाल के दौरान—मेरा ध्यान गंभीरता से केंद्रित होगा।" फरवरी 1901 में अपने दीक्षांत भाषण में लार्ड कर्जन ने अत्यत प्रोत्साहक शब्द कहे। उन्होंने कहा, "मेरी यह एक अभिलाषा है कि इस विश्वविद्यालय को देश का पहला विश्वविद्यालय होने के नाते जो दर्जा प्राप्त है, इसे उसके योग्य बनाऊं—इसके सामने एक ऊंचा आदर्श रखूं और इसे समर्थ बनाऊं कि यह यूरोप की ऐसी संस्थाओं के पदचिह्नों का अनुसरण कर सके।"

सितम्बर 1901 मे लार्ड कर्जन ने शिमला में शिक्षा विशेषज्ञों के एक सम्मेलन का आयोजन किया। सम्मेलन ने यह सिफारिश की कि वर्तमान पद्धति के दोषों को देखते हुए "सूझबूझ के साथ ढूंढे गये उपायों को लागू करना" आवश्यक है। उनकी राय थी कि विश्वविद्यालय के सीनेटों के गठन का वर्तमान स्वरूप ऐसे उपाय खोजने या लागू करने के लिए उपयुक्त नहीं है जो हमारे विद्यार्थियों के हित में फौरन आवश्यक है।" इसके बाद जनवरी 1902 मे भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की नियुक्ति की गई। कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति टामस रैले इसके अध्यक्ष थे और सदस्य थे सैयद हुसैन बिलग्रामी; जे. पी. हिवेट, भारत सरकार के गृह सचिव;

एलेक्जेंडर पेडलर, सार्वजनिक शिक्षा निदेशक, बंगाल; ए. जी. बोर्न, प्राचार्य प्रेसिडेंसी कालिज, मद्रास, डी. मैकीचेम, प्राचार्य विल्सन कालिज, बम्बई तथा गुरूदास बनर्जी। प्रत्येक विश्वविद्यालय मे उस विश्वविद्यालय विशेष के बारे में जांच-पड़ताल के लिए आयोग में एक स्थानीय सदस्य को शामिल किया गया था। आशुतोष मुकर्जी कलकत्ता के लिए स्थानीय सदस्य थे। आयोग ने महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की जिनमे सीनेट के पुनर्गठन, सिंडीकेट के अधिकार और कालिजो को सम्बद्ध करने के विषय शामिल थे। सबसे महत्त्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि विश्वविद्यालय को पूरी तरह से परीक्षा लेने वाली संख्या ही नही रहना चाहिए। 1902 की भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की सिफारिशो को एक बिल में सम्मिलित कर नवम्बर 1903 में भारतीय विधान परिषद के सम्मुख प्रस्तुत किया गया।

आशुतोष 1899 में कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा बगाल विधान परिषद् के लिए चुन लिये गये थे। 1901 मे वे परिषद के लिए पुनः निर्वाचित हुए। क्योंकि विश्वविद्यालय बिल साम्राज्य विधान परिषद के सामने था, आशुतोष अब इस परिषद् के लिए चुनाव लड़ने की ओर आकर्षित हुए। 1904 में उन्होंने महान् भारतीय नेता सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी और शक्तिशाली जमीदार दरभंगा के महाराजा को हराया और साम्राज्य विधान परिषद् में अपना स्थान ग्रहण किया। चुनाव के बाद शीघ्र ही लार्ड कर्ज़न ने उन्हें बिल से संबधित प्रवर समिति में शामिल किया। आशुतोष के चयन के विषय में लार्ड कर्ज़न ने कहा: "माननीय सदस्य अभी हाल ही में परिषद् के लिए निर्वाचित हुए। जैसे ही हमें यहा यह खबर मिली, हमने उन्हें फौरन बिल की प्रवर समिति में नियुक्त कर दिया। हालांकि हम यह जानते थे कि इससे कार्यवाहियों के समय और विवादो में अवश्य ही काफी वृद्धि होगी परंतु हम युक्तिसंगत और उचित अलोचना को पूरा अवसर देने को इतना उत्सुक थे कि हमने तुरंत उनकी सेवा का लाभ उठाया—हम अवसरवादी और चापलूस नहीं चाहते।"[1]

21 मार्च, 1904 को साम्राज्य विधान परिषद् में एक भाषण में आशुतोष ने विश्वविद्यालय के विषय में अपने आदर्श को स्पष्ट किया। उन्होंने कहा, "मेरे विचार में विश्वविद्यालय शिक्षको और विद्यार्थियों का एक ऐसा निगम है जिसमे वे विद्या के अनुसरण में और ज्ञान में वृद्धि के लिए एक-दूसरे से बंधे होते हैं और जो अपने उद्देश्यों की प्राप्ति से संबंधित जरूरतों को पूरा करने के लिए उपयुक्त भवन और उचित साधनों से संपन्न होता है। अपने शिक्षा-संबंधी लक्ष्यो के परिचालन में विश्वविद्यालय को सैद्धांतिक विषयों मे बाहरी नियंत्रण से मुक्त होना चाहिए। अध्यापन के क्षेत्र या पद्धति या विषय में भी उसे सभी तरह के बाहरी नियत्रण से

1. वही, पृष्ठ 60।

स्वतंत्र होना चाहिए। सर्वाधिक आवश्यक यह है कि विचारो को आधिकारिक बंधनो से आज़ाद होना चाहिए, चाहे वह बंधन राज्य की ओर से राजनीतिक किस्म का हो या गिरजाघर की ओर से धार्मिक या समाज की ओर से नागरिक किस्म का या फिर विद्या की ओट में विश्वविद्यालय की ही सामूहिक दमनकारी कार्यवाहियो का परिणाम हो। संस्थागत रूप में उसे ऐसे अधिकतम अधिकार प्रदान किये जाने चाहिए जो कि सूझबूझ के साथ प्रस्तावित किये जा सकते है। विश्वविद्यालय द्वारा बौद्धिक विकास की चरम सीमा के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इन अधिकारों का उपयोग योग्य सदस्यो वाले ऐसे चुने हुए निकायों मे ही निहित होना चाहिए जिनकी सदस्य संख्या पर्याप्त रूप से कम हो ताकि वे कुशल हो पर साथ ही इतनी कम भी न हो कि वह बुद्धिजीवियो का एक गुट बन जाये। सदस्य समय-समय पर बदलते रहने चाहिए ताकि वैयक्तिक नीतियो के प्रभाव से बचाव हो सके और उन्हे इतना प्रातिनिधिक होना चाहिए कि भूतकाल के अनुभव से उनका उतना ही सम्पर्क हो जितना कि भविष्य की उन आकाक्षाओ से, जिनका आकार उभर चुका है या जो स्पष्ट हो चुकी है।"

नये बिल मे इस उद्देश्य की प्राप्ति की कोई आशा नही थी और भारत के लोगो ने इस बिल की ज़ोरदार निंदा की। भारतीय विधान परिषद् के सदस्य के तौर पर गोखले ने बिल की कड़ी आलोचना की और यह घोषणा की कि भारत सरकार "यूरोप से शिक्षाशास्त्रियों को स्थायी एकाधिकार की शक्ति" प्रदान कर रही है। गोखले ने स्पष्ट किया कि बिल मे इस बात का कोई प्रावधान नहीं है कि सीनेट के सदस्य प्रोफेसरों द्वारा निर्वाचित किये जाये, जबकि यही वह वर्ग है। "जिसकी विश्वविद्यालय की कार्यवाहियो मे औरो की अपेक्षा अधिक नजदीकी तौर पर दिलचस्पी है।" "इसके अलावा निर्वाचन के लिए रखी गई सीटो का अनुपात बहुत कम है जबकि सरकार द्वारा मनोनीत करने के लिए आरक्षित सीटों की की संख्या बहुत अधिक है।" आशुतोष ने बिल की आलोचना करने में गोखले का साथ दिया। उन्होंने कहा कि जब कालिजों मे अध्यापन का अधिकांश उत्तरदायित्व भारतीय अध्यापकों के कंधे पर है तो विश्वविद्यालय के निकायो में यूरोपीय मूल के लोगो का अंश बढ़ाने का कोई औचित्य नही है। आशुतोष ने बिल में एक संशोधन का प्रस्ताव रखा जिसके अतर्गत सीनेट में कालिजों और विश्वविद्यालय के कुछ अध्यापको को शामिल करने की व्यवस्था थी। लेकिन सरकारी विरोध ने उसे विफल कर दिया।[1] आशुतोष ने कहा, "मैं उन लोगो में से नहीं हूं जो कहते हैं कि उच्च शिक्षा को पूरी तरह जनता के नियंत्रण में छोड़ दिया जाना चाहिए। इसके विपरीत, मैं स्वेच्छा से यह मानता हूं कि उच्च शिक्षा राज्य के परम कर्तव्यो में से

1. हन्ड्रेड ईयर्स ऑफ द यूनिवर्सिटी ऑफ कैलकटा पृ० 172।

एक है और उसे एक परोपकारी राज्य की उत्साहपूर्ण देखरेख में ही पोषित और विकसित किया जाना चाहिए। परंतु मैं अत्यत दृढ़ता से इस बात को अस्वीकार करता हूं कि कानून में ऐसा कोई भी प्रावधान आवश्यक या वाछनीय है जिससे विश्वविद्यालय को केवल राज्य के एक विभाग के रूप मे परिवर्तित करना सभव हो सके। निरतर काट-छांट या आवश्यकता से अधिक स्नेह के साथ देखभाल करने से एक खूबसूरत पेड़ के बढने में रूकावट पैदा होना सभव है।"[1] बिल के अनुसार सीनेट द्वारा बनाये गये नियम सरकार के सामने उसकी मंजूरी के लिए प्रस्तुत किये जाने थे। यदि सरकार को लगे कि उसमें कुछ जोड़ना या बदलना आवश्यक है तो उन्हें सीनेट के साथ परामर्श के बाद नियमों में सम्मिलित कर लिया जाता था। गोखले और आशुतोष, दोनों ही, इस प्रावधान के खिलाफ थे। आशुतोष ने कहा, "मैं इस विचार को पूरी तरह अस्वीकार करता हूं कि सरकार को नियमो में परि-बर्धन या परिवर्तन का अधिकार संभालना चाहिए—यह बात मुझे विश्व-विद्यालय के विशेषज्ञो के एक निकाय होने के स्वीकृत स्वरूप से असंगत लगती है कि उनके द्वारा बनाये गये नियमो को सरकार द्वारा बदला जाना संभव हो और मैं यह नही जान पाता हू कि इस नाजुक और कठिन काम को करने में सरकार को सिनेट के अलावा कहां से निपुण परामर्श की मदद मिल सकती है।"[2] गोखले इस बात से सहमत नही थे कि बिल के प्रावधानों से संबद्ध संस्थाओ के स्वरूप और कार्य-प्रणाली में सुधार हो पायेगा। आशुतोष का फिर भी यह विचार था कि नई पद्धति के अंतर्गत सम्बद्ध कालिज बेहतर कार्य करेंगे। उन्होंने कहा, "मैं बिल के उन प्रावधानों का स्वागत करता हूं जो संबद्ध कालिज की आवश्यकताओ को स्पष्ट करते है और मुझे जरा भी संशय नही है कि यदि इन प्रावधानों को विवेकपूर्वक, सही तरह से और सहानुभूतिपूर्वक लागू किया जाये तो उनसे हमारे कालिजो का स्तर और स्वरूप उन्नत होगा।"[3] बिल की अनेक धाराओ पर आपत्ति होने के बावजूद आशुतोष ने बिल की प्रवर समिति के सदस्य के रूप मे नये अधिनियम की धारा-12 के अल्पकालिक प्रावधानो को तैयार कर कानून के एक महत्त्वपूर्ण हिस्से में योगदान किया। यह धारा "अधिनियम के लागू होने के एक वर्ष के भीतर सामान्य फेलोज़ के निर्वाचन और नामजदगी और विश्वविद्यालय के मौजूदा प्रशासन के अस्थायी तौर पर जारी रहने से" संबंधित थी। रैले ने अस्थायी प्रावधानो को अपनाने के लिए साम्राज्य विधान परिषद् में प्रस्ताव रखते हुए कहा, "इन अस्थायी प्रावधानों के लिए हम मुख्य रूप से

1. वही, पृ० 171-172।
2. वही, पृ० 175।
3. वही, पृ० 173।

कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक विद्वान् जज की प्रवीणता के ऋणी है—प्रवर समिति के एक सदस्य जोकि बिल को वर्तमान स्वरूप में बदलने के लिए उत्तरदायी है और जो श्री गोखले के पक्के साथियो मे से एक हैं।"[1]

1904 के भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा-3 में निम्नलिखित प्रावधान शामिल था। "विश्वविद्यालय (अन्य बातो के साथ-साथ) इस उद्देश्य के लिए होगा और संस्थापित समझा जायेगा। कि वह विद्यार्थियो के शिक्षण की व्यवस्था करे, उसे विश्वविद्यालय के प्रोफेसर और लेक्चररों की नियुक्ति करने, शिक्षा से संबधित निधि का नियंत्रण और संचालन करने, विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, प्रयोगशालाओ और सग्रहालयो की स्थापना करने, उन्हें सुसज्जित करने और संभालने, विद्यार्थियों के निवास और आचरण के बारे मे नियम बनाने और इस अधिनियम के तथा संस्थापन सबंधी अधिनियमं के समानुरूप वे सभी कार्य करने का अधिकार होगा जिनसे अध्यापन और शोध को बढ़ावा मिलता हो।" आशुतोष ने अपने विश्वविद्यालय को अध्यापन और शोध से सबंधित महात् विश्वविद्यालय का रूप देने के लिए इसी धारा का लाभ उठाना चाहा था। बिल की अवस्था में ही आशुतोष ने समझ लिया था कि उनके लक्ष्यों की प्राप्ति के खिलाफ वित्त बड़ी रुकावट होगी और उन्होने सरकार से अपील की कि वह विश्वविद्यालय को उदारता के साथ और भरपूर सहायता दे।

नई नीति को कार्यान्वित करने के लिए एलेक्जेंडर पेडलर को कलकत्ता विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया गया। नये अधिनियम के अतर्गत सीनेट को आदेश दिया गया कि अधिनियम के लागू होने के एक वर्ष के भीतर वह नियमो का एक संशोधित ढांचा करे। सीनेट इस कार्य को एक वर्ष की अवधि मे पूरा नही कर पाया। इस पर सरकार ने सीनेट को इस कार्य के लिए छ. महीने की और अवधि की अनुमति दी। जब इस अवधि के बाद भी सीनेट कार्य को पूरा न कर पायी तो अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत सरकार के लिए अनिवार्य हो गया कि वह स्वयं नियम बनायें। भारत सरकार ने नियम बनाने के कार्य को पूरा करने के लिए अलग-अलग विचारो का प्रतिनिधित्व करने वाले सीनेट के सदस्यो की एक छोटी-सी समिति नियुक्त की। आशुतोष मुकर्जी इस समिति के अध्यक्ष नियुक्त किये गये जिसमें पांच अन्य सदस्य थे। समिति ने अपना कार्य दो महीनो में पूरा किया जिसके दौरान उसकी पचास बैठकें हुईं। यह कहने की आवश्यकता नही है कि आशुतोष इन नियमों के रचयिता और मुख्य शिल्पकार थे जोकि चौवन अध्यायो मे विभाजित थी और जिनमे कलकत्ता विश्वविद्यालय से सबंधित सभी विषयों पर बहुत विस्तार से विचार व्यक्त किये गये थे। आशुतोष पर, जो कि उच्च न्यायालय में

1. एन. के. सिन्हा—आशुतोष मुकर्जी, पृ० 60।

जज के कर्तव्यों के अलावा यह सारा कार्य भी कर रहे थे, इसका कितना भार पड़ा होगा, यह सोचा जा सकता है।

मार्च 1906 में जब पेडलर रिटायर हुए तो आशुतोष को कुलपति बनने के लिए आमंत्रित किया गया। वाइसराय को उनकी नियुक्ति के लिए सिफारिश करते हुए भारत सरकार के गृह सचिव एच. एच. रिस्ले ने लिखा, "मुझे यह कहने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं है कि माननीय न्यायमूर्ति श्री मुकर्जी अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों, विश्वविद्यालय के साथ पुराने सम्बन्धो और उसके लिए उनके द्वारा किये गये कार्यों और अपने राजकीय पद के कारण कुलपति के स्थान के लिए स्पष्ट रूप से योग्य सिद्ध होते हैं। डा० मुकर्जी को जनवरी 1889 में विश्वविद्यालय का फैलो नियुक्त किया गया और वह 16 वर्षों से भी अधिक समय से सिंडीकेट के सदस्य रहे हैं। इस अवधि के दौरान वे सिंडीकेट की एक को छोड़कर बाकी सभी बैठकों में और सीनेट तथा कला और विधि संकायों की सभी बैठको में उपस्थित रहे। पिछले वर्षों से वे गणित के पाठ्य परिषद् के अध्यक्ष रहे हैं और उन्होंने 1887 से गणित और कानून की सर्वोच्च परीक्षाओ को संचालित किया है। 1899 से 1903 तक उन्होंने बंगाल परिषद में विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व किया और 1903 से 1904 तक वे अतिरिक्त सदस्य के रूप में वाइसराय के परिषद् में बंगाल के प्रतिनिधि रहे। 1902 में उन्होंने बंगाल के स्थानीय सदस्य के रूप में भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की सेवा की और जब 1904 में विश्वविद्यालय का पुनर्गठन किया गया तो सरकार ने उन्हें सामान्य फैलो बनाया और कला, विज्ञान और कानून के तीम संकायो में नियुक्त किया। पिछले वर्ष के दौरान सीनेट, धारा-25 के अंतर्गत नियमों को तैयार करने के महत्त्वपूर्ण कार्य में व्यस्त रही और इसके लिए उसे कई समितियों में बांटा गया जिनमें से एक को छोड़कर अन्य सभी में डा० मुकर्जी कार्य कर रहे है। इस कारण तथा विश्वविद्यालय की स्थापना से लेकर उसकी कार्यवाहियों के ढेर सारे विवरण की असाधारण जानकारी के कारण वे विश्वविद्यालय की अंदरूनी कार्य-प्रणाली से किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक परिचित हैं। इनमें वर्तमान कुलपति भी शामिल हैं जो विभिन्न समितियो में बहस को संचालित करने में साधारणतया डा० मुकर्जी के परामर्श पर निर्भर रहे है—जब नियमो को तैयार करने की पेचीदा प्रक्रिया आगे बढ़ रही है, यह आवश्यक है कुलपति को विश्वविद्यालय के पुराने इतिहास और नियमो के बारे में पिछले वर्ष के दौरान हुए जटिल विचार-विमर्श की पूरी-पूरी जानकारी हो। यह ज्ञान किसी अन्य में नहीं है और मैं ऐसे किसी अन्य व्यक्ति के बारे में नहीं सोच सकता जिसमें विश्वविद्यालय के लिए ठोस और सुसंगत नियमों का ढांचा तैयार करने के कठिन काम को पूरा करने की क्षमता है। मेरा विश्वास है कि श्री मुकर्जी पर भरोसा किया जा सकता है कि वे विश्वविद्यालयो के मामलों में सरकारी नीति को लागू

करेंगे। विश्वविद्यालय आयोग के सम्मुख उनके द्वारा दिये गये एक गुप्त बयान में जानबूझ कर शिक्षा के स्तर के गिराये जाने की उन्होंने जोरदार शब्दो में निंदा की—और दस वर्ष पहले जब मैं डा० मुकर्जी के साथ सिंडीकेट में था, वे हमेशा ठोस शिक्षा के पक्ष में होते थे।"[1]

आशुतोष ने इस उच्च पद के लगातार चार सत्र संभाले जो कि 1906 से 1914 के बीच आठ वर्ष तक चला। अब बंगाल में उच्च शिक्षा के इतिहास में एक नये युग का आरंभ हुआ।

1. एन. के. सिन्हा—आशुतोष मुकर्जी, पृ० 64-66।

4

विधानमंडल और कलकत्ता नगर निगम में (1899-1904)

1899 में आशुतोष कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा बंगाल विधान परिषद के लिए निर्वाचित किये गये। उस समय कलकत्ता नगर निगम में संविधान का संशोधन करने से संबंधित एक विधेयक जो मैकेंजी बिल के नाम से प्रसिद्ध था, विधानमंडल के विचाराधीन था। बिल का उद्देश्य नगर निगम में निर्वाचितों की संख्या कम करना और निगम पर सरकार के नियंत्रण को बढ़ाना था। संविधान के अनुसार, जो कि 1888 से प्रचलित था, आयुक्तों की संख्या 75 थी जिनमें से 50 निर्वाचित थे, 15 सरकार द्वारा नियुक्त किये गये थे और 10 बंगाल वाणिज्य मंडल, पत्तन प्रबंध (Port Trust) और व्यवसाय समिति द्वारा मनोनीत थे। मैकेंजी बिल ने आयुक्तों की संख्या घटाकर पचास कर दी, जिनमें से पच्चीस करदाताओं की आम समिति द्वारा निर्वाचित किये जाने थे, दस व्यावसायिक हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली समितियो द्वारा मनोनीत किये जाने थे और पन्द्रह सरकार द्वारा मनोनीत होने थे। अध्यक्ष को, जिसके हाथो में सभी कार्यकारी अधिकार निहित थे, सरकार द्वारा मनोनीत किया जाना था। अध्यक्ष और निगम के बीच एक आम समिति की व्यवस्था थी और जिसमें अध्यक्ष और बारह आयुक्त होने थे, जिनमें से चार वार्ड आयुक्तो द्वारा और चार नियुक्त किये गये आयुक्तों द्वारा चुने जाने थे और चार सरकार द्वारा नियुक्त किये जाने थे।

बिल को प्रस्तावित करते ही इसके खिलाफ कलकत्ता के प्रतिष्ठित नागरिकों के नेतृत्व में करदाताओं के जोरदार प्रदर्शन हुए। आशुतोष ने इस जन-आन्दोलन की जिम्मेदारी संभाली और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के साथ विधानमंडल में बिल का विरोध किया तथा उसकी प्रत्येक धारा के विरुद्ध लड़ाई की। बिल 650 धाराओं में बंटा हुआ था। 1 सितम्बर को आरंभ होकर यह संघर्ष 27 सितम्बर 1899

तक जारी रहा। आशुतोष ने अनेक संशोधन प्रस्तावित किये जिनमें से अधिकतर पराजित हुए। आशुतोष ने प्रस्ताव रखा कि नगर निगम में एक सदस्य कलकत्ता विश्वविद्यालय का प्रतिनिधि होना चाहिए। उन्होंने कहा, "बिल के उन प्रावधानों के अनुसार जो नगर निगम के प्राथमिक कर्त्तव्यों का वर्णन करते हैं हम यह पाते हैं कि प्राथमिक और तकनीकी शिक्षा को बढ़ावा देना और मुफ्त पुस्तकालयों की व्यवस्था करना ऐसे उद्देश्य हैं जिन पर निगम को अपना ध्यान केन्द्रित करना है। इस प्रावधान के कारण यह प्रस्ताव अनुचित नहीं है कि निगम में कम से कम एक सदस्य शिक्षा से सम्बन्धित होना चाहिए। नगर सरकार के कार्यों में भाग लेने के लिए सम्पत्ति का स्वामित्व ही एकमात्र शर्त नहीं होनी चाहिए।" उन्होंने आगे कहा कि यदि सीनेट को एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया जाये तो किसी डाक्टर या इन्जीनियर को मनोनीत किया जाना चाहिए। ऐसे व्यक्ति की सलाह बहुमूल्य होगी। यह संशोधन पराजित हो गया। आशुतोष द्वारा प्रस्तावित एक अन्य संशोधन में कहा गया था कि नगर निगम का ऐसा कोई भी कर्मचारी जिसका वेतन 100 रुपये प्रतिमाह से अधिक है, यदि नौकरी से बर्खास्त किया जाये, तो वह इस आदेश के खिलाफ आम समिति को अपील कर सकेगा। यह बात मान ली गई।

बिल सरकार द्वारा प्राप्त ऐसी गुप्त शिकायतों का परिणाम था जिनमें नगर निगम पर अव्यवस्था और अनाचार के आरोप लगाये गये थे। बहस के समापन पर बोलते हुए आशुतोष ने कहा, "मैं बिना एक पल को रुके यह जानना चाहूंगा कि क्या किसी भी सरकार के लिए यह विवेकपूर्ण या राजनीतिक तौर पर उपयुक्त है कि वो तथ्यों की बिना किसी ऐसे स्वतन्त्र जांच आयोग द्वारा पड़ताल करवाये जिसके निर्णय पर लोगों को विश्वास हो, भारतीय साम्राज्य की राजधानी में लगभग पच्चीस वर्षों से प्रचलित नगर प्रशासन के स्वरूप को नष्ट करने के, नहीं तो कम से कम बिगाड़ने के उद्देश्य से परिषद् के कक्ष में इतना बड़ा कदम प्रस्तावित करे—इस परिस्थिति में यह विचार करना पूरी तरह से न्याय-संगत है कि संशोधन के बाद बिल में—उन बुराइयों को दूर करने का पूरा प्रावधान है या नहीं जिन्हें दूर करने के लिए प्रकट रूप से इसे प्रस्तावित किया गया था। बिल के स्पष्ट उद्देश्यों मे से एक था—कलकत्ता निगम में शिक्षित हिन्दुओं की प्रमुखता को समाप्त करना। बिल के प्रावधानों द्वारा यह उद्देश्य पर्याप्त रूप से पूरा किया जा चुका है।—परन्तु महोदय,—आपने शिक्षित हिन्दुओं की प्रमुखता को किसके द्वारा प्रतिस्थापित किया है? आप उसे यूरोपीय व्यापारियों या प्रगतिशील मुसलमानों द्वारा प्रतिस्थापित कर संतुष्ट नहीं हुए हैं, बल्कि आपने वह स्थान गैर-जिम्मेदार कार्यपालिका को सौंप दिया है।

"अपने बिल में ऐसे अनेक प्रावधानों को सम्मिलित किया है जो कि न्याय-शास्त्र के प्राथमिक सिद्धांतों के विरुद्ध हैं—आपने मूल्यांकन करने का ऐसा मनमाना

ढंग चलाया है जोकि अर्थशास्त्र की बुनियादी धारणाओं से मेल नही खाता और कानून को लागू करने की ब्रिटेन की प्रथा के विरुद्ध है—आपने बिल में भूमि अधिग्रहण अधिनियम के ऐसे रूपांतरित प्रावधानों को शामिल किया है जिनका सैद्धांतिक तौर पर बिलकुल समर्थन नही किया जा सकता—इन सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बिल में इतने अधिक प्रावधान है और उनमें से कई इतने अजीब और जटिल हैं—कि वे अच्छे से अच्छे प्रशासकों को उलझन में डाल देंगे, हर हालत में गरीबों के दमन को जन्म देंगे और हानिकारक मुकदमेबाजी को बढ़ावा देंगे।"[1]

विधान परिषद् उन दिनों विचार करने वाले निकायों से अधिक कुछ भी नहीं थे। सरकारी सदस्य बहुसंख्य होने के कारण गैर-सरकारी सदस्य कानून बनाने की प्रक्रिया को प्रभावित नहीं कर सकते थे। मैकेंजी बिल पर बहस के दौरान बिल के प्रभारी सदस्य ने "गंभीरता से परिषद् के कार्यों को इस प्रकार परिभाषित किया कि यह कार्य सरकार द्वारा सिद्धांत रूप में स्वीकृत किसी भी प्रस्तावित बिल के विषय में उस समय की सरकार के आदेशों को पूरा करना है।" आशुतोष ने इस कथन का जोरदार उत्तर दिया। उन्होंने कहा, "महोदय, मुझे इस बात पर आश्चर्य नहीं होगा यदि यह सरकारी सदस्यो के लिए आधिकारिक तौर पर निर्धारित कर्त्तव्य हो—परन्तु इस असाधारण सिद्धांत के गैर-सरकारी सदस्यों पर लागू किये जाने को मैं अस्वीकार करता हूं। मैं यह अधिकार अपने ही पास रखता हूं कि मैं अपने लिए स्वयं विचार करूं और फैसले करूं। मैंने किसी को भी अपनी अंतरात्मा का रखवाला नही बनाया है और जब तक मुझे इस परिषद् के सदस्य होने का सम्मान प्राप्त रहेगा, मेरा यह कर्त्तव्य होगा कि चाहे यह दल या वह दल किसी भी बात को स्वीकार या अस्वीकार करे, मैं अपनी समस्त क्षमता और बुद्धि के अनुसार परिषद् को परामर्श देता रहूं।"[2]

मैकेंजी बिल के कानून बन जाने के बाद सरकार ने आशुतोष को कलकत्ता निगम का आयुक्त मनोनीत किया। वे निगम की आम समिति के सदस्य निर्वाचित हुए। 1903 में उन्होंने बंगाल विधान परिषद् में कलकत्ता निगम का प्रतिनिधित्व किया। निगम में वे उतना ही सक्रिय थे जितना कि अन्य स्थानो पर और उन्होने करदाताओं के हितों के लिए काम किया। सड़कों की मरम्मत और जल-निकास पर उन्होंने सर्वाधिक ध्यान दिया।

जनवरी 1900 में बंगाल म्यूनिसिपल अधिनियम को जैसा दार्जिलिंग में लागू किया गया था, उसमें संशोधन के लिए बंगाल परिषद् में एक बिल का प्रस्ताव रखा गया। आशुतोष को प्रवर समिति का सदस्य नियुक्त किया गया।

आशुतोष ने बंगाल वित्तीय विवरण मे 1900-1901 के लिए शिक्षा के लिए की

1. प्रोसीडिंग्ज ऑफ बेन्गॉल लेजिस्लेटिव, काउन्सिल, सितंबर 27, 1899।
2. वही, सितंबर, 1899।

गई व्यवस्था की तीव्र निंदा की। उन्होंने सरकारी ललितकला कॉलिजों के रख-रखाव पर किये जा रहे व्यय में प्रतिवर्ष निरंतर होने वाली कमी पर चिंता व्यक्त की। इसके बावजूद इन्हीं वर्षों में इन कॉलिजों के शुल्को से प्राप्त आय में लगातार वृद्धि होती रही। उन्होने कहा, "यह परिस्थिति न सिर्फ मेरे लिए बल्कि प्रत्येक शिक्षित भारतवासी के लिए खेद का विषय रही है।" उन्होने यह तर्क दिया कि कम से कम एक सरकारी कॉलिज में बेहतरीन किस्म के उपलब्ध लोगों द्वारा उच्चतम स्तर की शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए ताकि गैर सरकारी संस्थाओं में भी कुशल शिक्षकों की व्यवस्था की जा सके। सरकार को प्राथमिक शिक्षा पर अधिक वित्त की व्यवस्था करने के नाम पर अपने कॉलिजों को कमजोर नहीं करना चाहिए। उन्होंने कहा, "मैं सरकार द्वारा जनता को शिक्षित करने के कर्तव्य की प्रशंसा करने के मामले में किसी से भी नही हिचकूंगा, पर मैं इसी तरह इस बात की भी अवहेलना नही कर सकता कि सरकार का यह भी कर्त्तव्य है कि वे समाज के उन वर्गों को उच्च शिक्षा की सभी संभव सुविधाएं दे जोकि इससे लाभ उठाने की योग्यता रखते है।" उन्होंने आगे कहा, "मैं यह नहीं मानता कि ऐसा समय आ गया है जब सरकार आराम से उच्च शिक्षा के मामले में कमज़ोरी दिखा सके और इसी कारण अत्यंत खेद के साथ मेरा ध्यान सरकार की छंटनी की नीति की ओर गया है। छंटनी का ज़रूरी तात्पर्य है घटिया लोगों को रोज़गार देना या सक्षम व्यक्तियों को कम वेतन पर रोज़गार देना, और इनमे से किसी भी स्थिति में परिणाम असंतोषजनक होंगे। शिक्षा के क्षेत्र में हमें सबसे बेहतरीन व्यक्तियों की सेवाओं का लाभ उठाना चाहिए।—परन्तु यदि आप अपने अन्य विभागों को अधिक आकर्षक बनाये, यदि आप अपने कार्यकारी या न्याय विभागों में भविष्य में बेहतर संभावनाओं की आशा दें, तो आपको शिक्षा विभाग में योग्यतम कर्मचारी नहीं मिलेंगे।"[1]

छोटे से छोटे कानून का निर्माण भी उनकी सतर्क और पैनी नज़र से बच नहीं सकता था। 31 मार्च 1900 को परिषद् के सामने 1869 का बंगाल अधिनियम-एक (पशुओं के प्रति क्रूरता) संशोधन के लिए लाया गया। आशुतोष ने चार संशोधन प्रस्तावित किए जिनमे से एक पराजित हो गया, एक स्वीकार हुआ और बाकी दो उन्होने वापस ले लिए। 'पशु' शब्द की बेहतर परिभाषा देने से सम्बन्धित उनका प्रस्ताव पराजित हो गया परन्तु अपराध करने के बाद अभियोजन की अवधि को सीमित करने के बारे में उनका प्रस्ताव पारित हो गया।

जब 1902-1903 का बंगाल वित्तीय विवरण प्रस्तुत किया तो आशुतोष ने शिक्षा-सेवा के प्रांतीय और अधीनस्थ स्तर के सदस्यों के पदो मे सुधार की

1. वही, अप्रैल 7,1900।

आवश्यकता पर ज़ोर दिया। कार्यपालिका और न्यायिक सेवाओं के सदस्यों को दिया जाने वाला आरंभिक वेतन अधिक था और उन सेवाओं में पदोन्नति भी अधिक शीघ्र प्राप्त होती थी। इन परिस्थितियो के कारण अधिक योग्य स्नातक सरकारी सेवाओं की उन शाखाओं में भर्ती होना अधिक पसंद करते थे। उन्होंने कहा कि प्रांतीय शिक्षा सेवाओं से सदस्यों का वेतन अधीनस्थ स्तर के न्यायिक और कार्यपालिका सेवाओं के वेतन से कम नही होना चाहिए। आशुतोष ने शिक्षा सेवाओं में योग्य व्यक्तियों को उपहासजनक स्तर के निम्न वेतन दिये जाने के उदाहरण पेश किए। संस्कृत कालिज के प्राचार्य, जोकि एक सुप्रसिद्ध विद्वान थे और 25 वर्षों से सेवारत थे, अब भी 300 रुपये के वेतनमान में ही थे। उनके जो शिष्य कार्यपालिका सेवा में भर्ती हुए उनको इससे दो-गुना अधिक आय प्राप्त होती थी। सरकारी स्कूल के शिक्षक को बीस रुपये प्रति माह दिया जाता था। परिणामस्वरूप हमारे बच्चों की शिक्षा बदतर हो गई। आशुतोष ने शिक्षा विभाग के अंतर्गत वरिष्ठ और प्रांतीय सेवाओं के बीच किये गये भेद की आलोचना करते हुए कहा कि यह मनमाने ढंग से किया गया है और किसी भी तर्क-संगत सिद्धांत पर आधारित नहीं है। समान रूप से दो स्नातकों में से एक को वरिष्ठ सेवा में रखा जाता है और दूसरे को प्रांतीय में। दोनों को एक ही कालिज में लगाया जाता है और दोनो का काम भी बिलकुल समान होता है। आशुतोष ने कहा, "—सिर्फ जब तनख्वाह की बात आती है तो आप एक को दूसरे की अपेक्षा दुगना वेतन देते हैं। मैं यह स्वीकार करता हूं कि इस असंगति को उचित सिद्ध करने के लिए आवश्यक कुशाग्र क्षमता मुझमें नही है।'

इसी प्रकार 1903-1904 के बजट में शिक्षा के लिए की गई व्यवस्था पर बहस करते हुए आशुतोष ने शिक्षा सेवा के दर्जे में सुधार करने और उसे सरकारी सेवाओं की कार्यपालिका और न्यायिक शाखाओं के समकक्ष लाने में सरकार की असफलता पर दुख व्यक्त किया।

जनवरी 1904 मे आशुतोष अपने प्रतिद्वन्द्वियों सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और दरभंगा के महाराजा को पराजित कर प्रांतों को विधान परिषदो के गैर-सरकारी सदस्यो द्वारा वाइसराय के विधान परिषद् के लिए चुने गये।

उन्होंने 8 जनवरी 1904 को साम्राज्य विधान परिषद् मे अपना स्थान ग्रहण किया। जून 1904 में जब वे कलकत्ता उच्च न्यायालय के जज बने तो परिषद् की उनकी सदस्यता समाप्त हो गई। इस छोटी सी अवधि में परिषद् की कार्यवाहियों में उन्होंने महत्वपूर्ण रूप से भाग लिया।

जिस दिन उन्होने परिषद् मे अपना स्थान संभाला उसी दिन 1882 के सम्पत्ति हस्तांतरण अधिनियम में संशोधन पर एक बिल बहस के लिए रखा गया और आशुतोष ने बिल के कुछ महत्वपूर्ण प्रावधानों की आलोचना की।

मार्च 1904 में परिषद् में भारतीय राजकीय रहस्य (संशोधन) बिल विचारार्थ स्वीकार किया गया। आशुतोष ने भारत सरकार और भारतीय राज्यो के बीच दीवानी विषयो पर किये गये पत्र-व्यवहार को बिल के अधिकार क्षेत्र से अलग रखने के उद्देश्य से संशोधन प्रस्तावित किये। वाइसराय लार्ड कर्ज़न ऐसे पत्र-व्यवहार को गोपनीय रखने के उत्सुक थे। उन्होने कहा, "मैं इससे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण बात की कल्पना नही कर सकता कि भारत सरकार भारत के देशी राजकुमारो के साथ संबंधों के विषय का, जोकि वास्तव में उनके साथ वाइसराय के सम्बन्ध है और जिनकी दोनों पक्ष कद्र करते हैं तथा अधिकांश तौर पर माननीय समझते हैं, समाचारपत्रो मे बिना किसी रोकटोक के प्रकाशन और ब... हो। ऐसी परिस्थिति न केवल हमारे लिए अरुचिकर होगी बल्कि उनके लिए घृणा की बात होगी और राज्य के हितो के विरुद्ध होगी।" आशुतोष ने उत्तर दिया, "मुझे खेद है कि मैं इस विचार से सहमत नहीं हो सकता कि भारत सरकार और देशी राज्यों के बीच दीवानी सम्बन्धो के बारे में सूचनाओ को प्रकाशित करने पर उस तरह का दंड दिया जाये जोकि बिल में प्रस्तावित है। इस बात की कल्पना की जा सकती है कि इस विषय का प्रकाशन उन अधिकारियो के लिए व्यक्तिगत तौर पर कभी-कभी गंभीर असुविधा का साधन बन सकती है जो ऐसे मामलों में शामिल हो जोकि दिन की रोशनी में नहीं हो सकते। परन्तु मैं यह कहना चाहू... कि यह न केवल भारत सरकार के लिए बल्कि देशी राज्यो के लिए भी स्पष्ट रूप से लाभदायक होगा कि दोनो के बीच दीवानी सम्बन्ध इस प्रकार के हों कि वे सूक्ष्म से सूक्ष्म जांच को भी बरदाश्त कर सके। निश्चय ही यदि वे ऐसे हों जैसा कि मैंने बताया है तो सच्ची आलोचना से भयभीत नही होना चाहिए। दूसरी ओर, यदि यह सम्बन्ध इससे बिलकुल अलग किस्म के हो तो पूर्णतम और बिलकुल स्वतन्त्र सार्वजनिक बहस का स्वागत किया जाना चाहिए।"[1]

बहस की समाप्ति पर आशुतोष ने बिल के उन हिस्सो पर जोरदार शब्दों मे अपनी असहमति अंकित करवाई जिन पर उन्हे एतराज था। उन्होने कहा, "मुझे यह कहने में ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं है कि चाहे सरकार के कुछ ही दावे क्यों न हो, बिल के प्रावधान देश मे पत्रकारिता के लिए गंभीर खतरा होगे। मैं अपने आपको यह सोचने से रोक नही सकता कि दीवानी मामलो से ... न्धित सूचनाओ कोरहस्य का स्वरूप देना अधिशासी सभा (Governing Body) के कमज़ोर होने और साथ ही उचित मैत्रीपूर्ण आलोचना से बचने की उसकी अचेत प्रवृत्ति का सूचक है। यदि ऐसा कोई देश है जहां अच्छी सरकार के लिए स्वतन्त्र सार्वजनिक बहस का अधिकार आवश्यक है तो वह भारत है और इस बात में शक की कोई उचित गुंजाइश नही

1. एब्सट्रैक्ट ऑफ द प्रोसीडिंग्ज ऑफ़ द वाइसरॉयज लेजिस्लेटिव काउन्सिल, मार्च 4, 1904।

हो सकती कि निर्विवाद प्रसिद्धि के यूरोपीय और भारतीय, दोनों ही पत्रकारों ने जो भय और उत्तेजना व्यक्त की है उसका स्पष्टरूप से पक्का आधार है।—इन सब बातों के बावजूद जाहिर है कि हम ऐसे विचित्र समय में रह रहे है जब सरकार इस दमनकारी कानून को लागू करने को कृत-संकल्प लगती है जो कि प्रेस की स्वतन्त्रता के लिए तथा सरकार की नीतियों की निर्भय और सच्ची आलोचना के लिए स्थायी खतरा होगा और—जोकि बीसवी शताब्दी के आरम्भ में ब्रिटिश साम्राज्य के किसी भी हिस्से की कानून-पुस्तिका में एक गहरा धब्बा होगा—इस कारण मैं बिल के विरोध में अपनी जोरदार असहमति अंकित करवाना अपना कर्त्तव्य समझता हूं, हालांकि यदि यह नौसेना या थलसेना से संबंधित होता तो मैं कदाचित इसका समर्थन करता।"[1]

इसके बाद सहकारी साख समितियों से सम्बन्धित बिल आया जिसका आशुतोष ने पूरे मन से स्वागत किया। उन्होंने सरकार को इस कानून के लिए बधाई दी जिसके बारे में उन्होने कहा, कि "भविष्य में यह कृषि पर आधारित हमारी विशाल जनसंख्या की आर्थिक स्थिति को सुधारने की उस समस्या का कामयाब हल ढूंढ़ने के प्रयत्न में सही तौर पर पहला गंभीर क़दम माना जायेगा जिसने पिछली सरकारों की प्रवीणता को निष्फल कर दिया था।"[2]

1904 के भारतीय विश्वविद्यालय बिल पर बहस में आशुतोष के योगदान का विवरण अध्याय-3 में दिया जा चुका है।

जब भारत सरकार का 1904-1905 का बजट बहस के लिए प्रस्तुत हुआ तो आशुतोष ने वित्त सदस्य द्वारा पिछले चार वर्षों में प्रत्येक वर्ष दिखाये गये बचत की ओर ध्यान आकर्षित किया और दलील दी कि अब करों में कटौती करने का अच्छा-खासा आधार है। उन्होंने कहा कि बचत के लिए जिम्मेदार दो प्रमुख कारण हैं—(1) विनिमय दर की स्थिरता और (2) 1883-1884 के बाद कराधान मे वृद्धि। उन्होंने कहा कि विनिमय दर की बनावटी स्थिरता जनसंख्या के निर्धन वर्गों के लिए हानिकारक रही है। साथ ही, समय-समय पर परिस्थितियों के अनुसार कुछ सुनिश्चित कारणों से अतिरिक्त कर भी लगाये गये थे। परन्तु अतिरिक्त कराधान की परिस्थितियो और कारणों के समाप्त होने पर भी इन्हें हटाया नही गया था। आशुतोष ने आय कर को समाप्त करने की जोरदार मांग की जिसे कि एक आपात् स्थिति का सामना करने के लिए लागू किया गया था। उन्होने कहा' "कराधान आमतौर पर उस समय किया जाता है जब सरकार को अचानक वित्तीय कठिनाई का सामना करना पड़ता है,ताकि वह आमदनी और

1. वही।
2. वही, मार्च 23, 1904।

व्यय को संतुलित कर सकें ऐसे कराधान को केवल तब तक लागू करना चाहिए जब तक वित्तीय स्थिति कठिन बनी रहे। ऐसे समय में भी जबकि खूब बचत हो रही हो इस तरह के कर को लागू रखना वित्त के सभी ठोस सिद्धांतो के विरुद्ध है, उस उद्देश्य के खिलाफ है जिसके लिए कर लगाया गया है और इससे अन्त में फिजूल-खर्ची को बढ़ावा मिलने की संभावना भी पैदा हो सकती है।"[1]

आशुतोष ने आगे दलील दी कि आयकर अप्रिय माना जाता है तथा यह कष्टदायक है और भ्रष्टाचार को जन्म देता है। इसका लोगों पर अत्यधिक असमान प्रभाव पड़ता है। उन्होंने वाइसराय की परिषद् के दो भूतपूर्व वित्त सदस्यों—लांग (1862) और मैसी (1868) के विचारों का जिक्र किया जिन्होंने यह विचार व्यक्त किया था कि आयकर को अस्थायी तौर पर ही लगाना चाहिए।

आशुतोष ने भारत और ब्रिटेन के राजकोषों के बीच सैनिक व्यय के बंटवारे की अनुचित पद्धति के खिलाफ जोरदार भाषण दिया। उन्होने इस बात के अनेक उदाहरण दिये जब एक के बाद एक कई वाइसरायों ने ब्रिटिश सरकार से अधिक समान बंटवारा करने की व्यर्थ अपीलें कीं। उन्होंने एक ऐसे मौके का जिक्र किया जब भारत से भेजे गये एक संदेश में तर्क दिया गया था कि "इंगलैण्ड का कर देने वाला समुदाय विश्व में सबसे अधिक धनवान समुदायो में से एक है जबकि भारत का विश्व में सबसे निर्धन में एक।" आशुतोष ने विचार व्यक्त किया, "यह बात किसी भी हालत में न्याय-संगत या ठोस साम्राज्य नीति के अनुरूप नहीं है कि धनी और प्रमुख जाति खर्च के भार से राहत पाने के लिए उसे निर्धन और परतन्त्र जाति पर थोप दे। इस कार्यवाही के समानता के सिद्धांत के विरुद्ध होने में शक की कोई गुंजाइश नही है।"[2]

आशुतोष ने सरकार को एक महत्वपूर्ण सुझाव यह भी दिया कि उसे सारे भारत में कृषि शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करनी चाहिए। उन्होने कहा, "आवश्यकता केवल इस बात की ही नही कि भारत सरकार का एक कृषि विभाग हो—बल्कि प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च स्तरों पर कृषि शिक्षा के लिए स्कूल और सुविधाएं हों।"

1. वही, मार्च 30, 1904।
2. वही।

5

आशुतोष और कलकत्ता विश्वविद्यालय (1906-14)

विश्वविद्यालय के 1908 के दीक्षांत समारोह में कुलाधिपति की हैसियत से बोलते हुए लार्ड मिंटो ने कहा, "मैं विश्वविद्यालय को बधाई देता हूं कि डा० मुकर्जी उसके कुलपति है। उन्होने विश्वविद्यालय के इतिहास के एक नये मोड़ पर अपना पदभार संभाला है, क्योंकि अपनी रजत जयंती के साथ विश्वविद्यालय न केवल कालक्रम के अनुसार एक नये युग मे प्रवेश कर रहा है बल्कि जैसाकि आप जानते है 1857 के निगमन अधिनियम में 1904 में विश्वविद्यालय अधिनियम द्वारा किये गये सशोधन के अनुसार एक नये शासन और नयी प्रशासनिक व्यवस्था में भी दाखिल हो रहा है।—मैं डा० मुकर्जी से अधिक क्षमता वाले किसी ऐसे प्रशासक को नहीं जानता जो शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त उथल-पुथल और दलदल से विद्या के जहाज को उबार सके।" विश्वविद्यालय के लिए तय किये गये नये युग का समारंभ हाल ही में बनाये गये नये नियमो को लागू करके किया जाना था। आशुतोष द्वारा नये नियमो के जरिये उस सारे विशाल इलाके में, जो उन दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय के अधिकार क्षेत्र में थे, शिक्षा के सुधार के क्षेत्र में किये गये योगदान के महत्त्व को इन नियमो के स्वरूप के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। विश्वविद्यालय की विभिन्न परीक्षाओ से संबंधित नियमो में बुनियादी किस्म के परिवर्तन किये गये थे। इन परिवर्तनो के स्वरूप को आशुतोष ने अपने 1907 के दीक्षांत भाषण में इस प्रकार समझाया : "नियमो के उद्देश्य हमेशा यही रहे है कि परीक्षाओ को सरल बनाया जाये, जरूरी और गैर-जरूरी के बीच भेद किया जाये, सभी विद्यार्थियो को गैर-जरूरी विषयो में विस्तृत चुनाव और स्वतंत्र कार्य क्षेत्र की अनुमति दी जाये परंतु प्रत्येक विद्यार्थी से अपने चुने हुए विषयो में संपूर्ण ज्ञान की अपेक्षा की जाये। मैट्रिक स्तर पर पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाया जाना चाहिए कि उसमें वह विषय शामिल हों जिनसे

कुछ सीमा तक अभिव्यक्त करने की शक्ति में प्रशिक्षण और विकास हो, कुछ तर्क शक्ति प्राप्त हो और कुछ निरीक्षण की। विद्यार्थी में अभिव्यंजना की न्यूनतम शक्ति पैदा करने का निर्विवाद और पहला माध्यम उसकी अपनी भाषा है, जिसके ढांचे और साहित्य से सुपरिचित होना उसके लिए आवश्यक है। फलस्वरूप नियमों के अंतर्गत इस बात पर बल दिया गया है कि मैट्रिक से लेकर स्नातक स्तर तक विद्यार्थी को उसकी अपनी भाषा का ज्ञान और प्रस्ताव लिखने के अभ्यास को विद्यार्थी जीवन के सभी चरणों के दौरान आवश्यक माना जाए। परंतु देशी भाषा के ज्ञान के अतिरिक्त पर्याप्त साहित्यक प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी को स्पष्ट, सरल और सही अंग्रेजी में लिखने की क्षमता हासिल करनी चाहिए और सादी आधुनिक अंग्रेजी भाषा में जाने-माने विषयों पर अच्छी समझ पैदा करनी चाहिए। इसके अलावा उसे एक स्तर तक किसी एक प्राचीन भाषा का भी सही ज्ञान होना चाहिए। यदि इन भाषाओं को समझदारी से सिखाया जाये, यदि विद्यार्थी को भाषाओं मुहावरों, कथन-शैली, लेखन-शैली, पद्धति और रीति से संबंध रखने वाले भेद को समझने का मौका दिया जाये तो उसे काफी बौद्धिक अनुशासन प्राप्त होगा और उसकी अभिव्यंजना शक्ति का सही दिशा में विकास होगा। थोड़ी-बहुत तर्क शक्ति प्राप्त करने के लिए उसे गणित के कुछ तत्त्व भी सीखने होंगे जिसमें रेखा गणित में प्रशिक्षण शामिल है जो प्रायोगिक कार्य के स्तर से लेकर धीरे-धीरे तर्क की प्रक्रिया तक पहुंचनी चाहिए। इस बात को निश्चित करने के लिए कि वह अपनी निरीक्षण शक्ति को परिष्कृत करे, यह वांछनीय होगा कि उसे व्यावहारिक भौतिकी अथवा यंत्र विज्ञान अथवा अकार्बनिक रसायन के मूल सिद्धांतों की जानकारी दी जाय। परंतु यह व्यवहार्य नहीं सिद्ध हो पाया है क्योंकि हमारे अधिकांश स्कूलों में व्यावहारिक विषयों को पढ़ाने के लिए आवश्यक उपकरण नहीं हैं। अतः विद्यार्थी को विषयों को चुनने की अनुमति दी जाती है जिसमें उसके देश के इतिहास का सामान्य ज्ञान तथा विश्व भूगोल का सामान्य ज्ञान शामिल होता है। स्पष्ट है कि ठीक ढंग से लागू किये जाने और रटने की मूर्खतापूर्ण आदत को त्याग देने से इस प्रकार के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम से हर हालत में बुद्धि का विकास होगा और विद्यार्थी विश्वविद्यालय शिक्षा में प्रवेश के योग्य बनाया जा सकेगा। 16 वर्ष की आयु में इस तरह के पाठ्यक्रम को पूरा करने के लिए विद्यार्थी में किसी अद्भुत क्षमता की आवश्यकता नहीं है।" इस देश के शिक्षाशास्त्रियों को आशुतोष के इन शब्दो को धर्मग्रंथ की तरह बार-बार पढ़ना चाहिए। कानून और चिकित्सा संकायों में संपूर्ण ज्ञान को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बुनियादी किस्म के परिवर्तन किये गये। कानून संकाय में कानूनी समस्याओं से संबंधित विवेचनो में मुकदमों और दफाओं के अनुसार शिक्षा देने की पद्धति शुरू की गई। चिकित्सा संकाय की परीक्षाओं में डिग्री के लिए अध्ययन की अवधि में एक वर्ष बढ़ा दिया गया ताकि व्यावहारिक प्रशिक्षण और

अस्पताल में कार्य के लिए पर्याप्त समय मिल सके। शिक्षण के लिए एक डिग्री शुरू की गई ताकि पेशेवर अध्यापकों को शिक्षा के सिद्धांतो और पद्धतियो के बारे में प्रशिक्षण दिया जा सके। मौलिक शोध को मान्यता और बढ़ावा देने के लिए डाक्टरेट की उपाधि संस्थापित की गई।

1904 के अधिनियम की धारा-3 ने विश्वविद्यालय का स्वरूप बदल दिया था जो कि अब केवल परीक्षा लेने वाली ही नहीं बल्कि शिक्षा प्रदान करने वाली संस्था भी होनी थी। इस धारा ने विश्वविद्यालय को प्रोफेसर और लेक्चररों को नियुक्ति के अधिकार दिये थे। परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय में प्रोफेसरों, रीडरों और लेक्चररों की नियुक्ति के विषय पर नियम भी बनाये गये। अधिनियम के आदेशानुसार उन शर्तों से संबंधित नियम भी बनाये गये। जिन्हें कॉलिजो द्वारा विश्वविद्यालय से संबंधन के लिए पूरा किया जाना था और विश्वविद्यालय के एक निरीक्षक द्वारा कॉलिजों के निरीक्षण का भी प्रावधान किया गया। कॉलिज विश्वविद्यालय का अंग बन गये और विश्वविद्यालय का कार्य यह सुनिश्चित करना था कि वे संतोषजनक ढंग से काम करें। सभी कॉलिजों का यह कर्त्तव्य हो गया कि वे न सिर्फ बौद्धिक अनुशासन को बढ़ावा दें बल्कि विद्यार्थियों के शारीरिक और नैतिक कल्याण की भी व्यवस्था करें। अत. छात्रो के आवास के बारे में भी नियम बनाये गये। सैडलर कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में विचार व्यक्त किया कि : "इस प्रकार 1904 के अधिनियम और उसके कारण आरंभ किये गये कार्यों से छात्र जीवन की दशा और कॉलिजों द्वारा दिए जाने वाले प्रशिक्षण कार्य के स्वरूप में अत्यंत महत्त्वपूर्ण सुधार हुआ और इस वास्तविकता की और उनके उपलब्धियो के महत्त्व की हम हृदय से क़द्र करना चाहते है।"

महान् राष्ट्रनेता सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी इस समय सिनेट के सदस्य थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'ए नेशन इन मेकिंग' में कुलपति के रूप में आशुतोष के बारे में अपनी राय लीपिबद्ध कर दी है। "कलकत्ता विश्वविद्यालय के साथ उनके पुराने संबंधों, शिक्षा संबंधी समस्याओं की विस्तृत समझ और उनसे जूझने की उनकी असाधारण क्षमता ने सर आशुतोष को विश्वविद्यालय में सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति बना दिया था। वे जिस दौरान कुलपति रहे (और उन्होने यह पद अनेक वर्षों तक संभाला था), उन्होंने विश्वविद्यालय पर अधिकतम नियंत्रण के साथ शासन किया और यह कहना बिलकुल सही होगा कि उन्होने नियमों को समझ-बूझ के साथ और सभी के हितों को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार लागू किया कि उनके कारण बंगाल के शिक्षित वर्ग के मस्तिष्क में उत्पन्न संदेह और चिंता को आंशिक तौर पर कम किया जा सका।"[1]

1. एस. एन. बैनर्जी—ए नेशन इन मेकिंग, पृ० 168।

अपने कुलपति पद की लगभग चौथी मीआद के मध्य तक आशुतोष को भारत सरकार का विश्वास प्राप्त रहा। और इसी कारण पूर्वी बंगाल और असम के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर बैम्पफाइल्ड फुलर पर उनकी विजय संभव हो पाई। यह 1906 की बात है, जो आशुतोष के कुलपति पद का पहला वर्ष था। लार्ड कर्जन द्वारा बंगाल के विभाजन किये जाने के खिलाफ आंदोलन जारी था और सिराजगंज के दो स्कूलों के छात्रों ने शहर में ऊधम मचाया था। पूर्वी बंगाल और असम के शिक्षा विभाग ने यह प्रस्तावित किया था कि कलकत्ता विश्वविद्यालय इन दो स्कूलों की, जो निजी स्तर की प्रबंध समितियों द्वारा संचालित थे, मान्यता समाप्त कर दे और मुख्य सचिव ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार को इस आशय का एक पत्र लिखा। आशुतोष मुकर्जी ने प्रस्ताव के औचित्य की ओर कुलाधिपति लार्ड मिंटो का ध्यान आकर्षित किया और आग्रह कि इस मामले को जैसा विश्व-विद्यालय उचित समझे वैसे ही निपटाने की अनुमति दी जाये। लार्ड मिंटो इससे सहमत हुए और सरकार ने सर बैंपफाइल्ड फुलर को यह बताते हुए एक पत्र लिखा कि इन स्कूलो की मान्यता रद्द कर देना इस समय अविवेकपूर्ण होगा। बैम्पफाइल्ड फुलर इससे संतुष्ट नहीं हुए और उन्होंने कहा कि या तो सरकार के अनुरोध पर दोबारा विचार किया जाये अथवा उनका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया जाये। मिंटो ने सहर्ष फुलर का त्यागपत्र स्वीकार कर लिया। इस प्रकार स्कूलों पर विश्वविद्यालय का नियंत्रण बना रहा। आशुतोष के कुलपति पद की पहली मिआद 31 मार्च, 1908 को समाप्त होनी थी। आगामी महीनों में विश्वविद्यालय के सम्मुख उपस्थित विशाल कार्यों को देखते हुए, जिनमें संबद्ध कालिजों और मान्यता प्राप्त स्कूलों के प्राध्यापकों, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं आदि के निरीक्षण-परीक्षण के काम और अनेक अन्य कार्य शामिल थे, सरकार ने महसूस किया कि आशुतोष की कुलपति के रूप में दोबारा नियुक्ति आवश्यक है क्योंकि उनके विचार में कोई भी अन्य व्यक्ति इस समस्त कार्य को पूरा करने की क्षमता नहीं रखता था। इसके साथ ही सरकार ने यह भी महसूस किया कि उच्च न्यायालय में अपने न्याय संबंधी कार्य के साथ विश्वविद्यालय का भी काम जुड़ जाने से आशुतोष पर ज़बर्दस्त भार पड़ेगा और उन्हें उच्च न्यायालय के कार्य से छुट्टी देकर 1 जनवरी से 31 अगस्त, 1908 तक आठ महीनों के लिए विश्वविद्यालय में प्रतिनियुक्ति पर रखा गया। इस सिलसिले में लेफ्टिनेंट गवर्नर सर ए. एच. एल. फ्रेज़र ने लिखा, "डा० मुकर्जी के चिकित्सकों का विचार है कि उनकी बीमारी की गंभीरता का कारण बहुत हद तक अत्यधिक परिश्रम की वजह से उनके स्वास्थ्य का जवाब दे जाना है।—अत: उच्च न्यायालय के राजकीय उत्तरदायित्व के साथ-साथ कुलपति पद के कार्यभार

को संभालना उनके लिए बहुत खतरनाक होगा।"[1]

अगले कुछ वर्षों के दौरान आशुतोष के मार्ग-दर्शन में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने एक अध्यापन और शोध कार्य में संलग्न विश्वविद्यालय का पूरा रूप प्राप्त करने की दिशा में बहुत प्रगति की। उस समय विश्वविद्यालय की बुनियादी आवश्यकता थी स्नातकोत्तर कक्षाओं को लगाने के लिए जगह और एक उपयुक्त पुस्तकालय। विश्वविद्यालय के अकेले एक भवन 'सिनेट हाउस' में केवल प्रशासनिक दफ्तरों के लिए ही लगभग पर्याप्त जगह थी। विश्वविद्यालय अब मात्र परीक्षा लेने वाली संस्था नहीं थी। इसलिए अध्यापन और शोध के नये कार्यों को पूरा करने के लिए उसे जगह की ज़रूरत थी। आशुतोष ने विश्वविद्यालय की आवश्यकताओं के प्रति देश के धनी कुलीन वर्ग की सहानुभूति हासिल की और ऐसे समय में दो उदार उपहार प्राप्त किये। इनमें से एक दरभंगा के महाराजा रामेश्वर सिंह की ओर से था जिन्होने ढाई लाख रुपये दान के तौर पर दिए और दूसरा भी इतनी ही रकम का सर गुरुप्रसन्न घोष की तरफ से था। दूसरे दान का उपयोग भारतीय विद्यार्थियों को कला और उद्योगों के क्षेत्र मे प्रशिक्षण के लिए यूरोप, जापान और अमरीका भेजने पर किया जाना था। दरभंगा के महाराजा के उपहार में सरकार द्वारा दी गई दो लाख रुपये की आर्थिक सहायता और स्वयं विश्वविद्यालय द्वारा किया गया दो लाख रुपये का योगदान और जुड़ गया। इस समस्त राशि से सिनेट हाउस के पश्चिम में स्थित बस्ती को प्राप्त किया गया और चार मंज़िला दरभंगा भवन का निर्माण किया गया। इस नई इमारत में यूनिवर्सिटी लॉ कालिज सहित सभी स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए, विश्वविद्यालय के पुस्तकालय तथा प्रशासनिक कार्यालयों के लिए जगह की व्यवस्था थी। विश्वविद्यालय ने सिनेट हाउस के दक्षिण में स्थित डेढ़ बीघा भूमि भी प्राप्त कर ली जहां पर उस समय बाज़ार लगा करता था। इस भूमि के लिए विश्वविद्यालय ने अपनी आरक्षित निधि में से एक लाख पचास हज़ार रुपये की रकम अदा की। इस भूमि पर यथासमय 'आशुतोष भवन' खड़ा किया गया जिसका अब कला और वाणिज्य की स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए इस्तेमाल होता है। 1908 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रेस की भी आधारशिला रखी गई जो कि तब तक कोलूतला में एक किराये के मकान में स्थित थी।

आशुतोष की एक महान् उपलब्धि थी 1909 में यूनिवर्सिटी लॉ कालिज का संस्थापन। इससे पूर्व कानून की शिक्षा संबद्ध कॉलिजों में दी जाती थी। 1908 में ऐसे 18 कॉलिज थे जो कानून पढ़ाने के लिए सम्बद्ध थे। इन कॉलिजों में प्राध्यापकों की संख्या नये नियमों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपर्याप्त

1. एन. के. सिन्हा, पृ॰ 74।

थी। कानून पुस्तकालय तो वास्तव में इन कॉलिजों में थे ही नहीं। अपनी कमजोरी को महसूस कर और नये नियमो के पालन में अपनी अयोग्यता को समझते हुए सरकार ने स्वयं अपने कॉलिजों में कानून की सभी कक्षाएं बंद करने का फैसला किया। निजी कॉलिजों ने उनकी देखा-देखी की।" केवल कलकत्ता के रिपन कॉलिज ने कानून की कक्षाएं जारी रखने का निर्णय लिया। जुलाई 1808 मे आशुतोष मुकर्जी ने सिनेट में यूनिवर्सिटी लॉ कॉलिज की स्थापना करने का प्रस्ताव रखा और उनका प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हो गया। यूनिवर्सिटी लॉ कॉलेज ने जुलाई 1909 में काम करना शुरू कर दिया। बंगाल सरकार और भारत सरकार ने लॉ कालेज को चलाने के लिए वार्षिक अनुदानों की मंजूरी दी। निजी स्रोत भी इस विषय में पीछे नही रहे क्योंकि उन्हें आशुतोष पर विश्वास था। कासिम बाजार के महाराजा ने कई छात्रवृत्तियां शुरू करने के लिए यूनिवर्सिटी लॉ कालेज को 50,000 रुपये का दान दिया जिसे छात्रो को एक प्रतियोगिता परीक्षा के बाद प्रदान किया जाता था। महाराजा प्रद्योत कुमार ठाकुर ने कॉलेज को कानून पुस्तकालय की संस्थापन के लिए 10,000 रुपये का उपहार दिया और अपने दादा प्रसन्न कुमार ठाकुर द्वारा छोड़ा हुआ मूल्यवान कानून पुस्तकालय भी कालेज को प्रदान किया। अनाथ नाथ देब ने कानून में शोध पुरस्कार की संस्थापना के लिए 1912 मे 25,000 रुपये का उपहार दिया। यूनिवर्सिटी लॉ कालेज को दरभंगा पुस्तकालय भवन में जगह दी गई थी। नये नियमों के अंतर्गत कानून के छात्रों के प्रशिक्षण के लिए 'कानून सभाओं' की व्यवस्था की गई थी। आशुतोष बहुत से अवसरों पर 'कानून सभाओं' की अध्यक्षता करते और कानून के विद्यार्थियो की कक्षाएं लेते।

भवन निर्माण का कार्य शुरू होने से भी पहले आशुतोष ने विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा की शुरूआत कर दी। अध्ययन की सभी शाखाओं के लिए वित्त की पर्याप्त व्यवस्था करना संभव नही था और कुछ समय के लिए विश्वविद्यालय में उन विषयों की स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए लेक्चररों की नियुक्ति की गई जहां पढ़ाई फौरन आरंभ करना जरूरी था। मराठी के एक विद्वान् श्री कोसाम्बी को पाली भाषा और साहित्य पढ़ाने के लिए नियुक्त किया गया। इस प्रकार कलकत्ता विश्वविद्यालय पाली की शिक्षा देने वाला भारत का पहला विश्वविद्यालय बना। वेदों में उच्च शिक्षा के लिए आचार्य सत्यव्रत समाश्रमी को नियुक्त किया गया और वेदांत दर्शन पर व्याख्यान देने के लिए पाण्डेय रामावतार शर्मा को। ऐसे विशिष्ट स्नातकों के लिए जो स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त करने की इच्छा रखते थे, 32 रुपए प्रति मास की दो वर्ष तक चलने वाली 12 स्नातकोत्तर छात्रवृत्तियां प्रारंभ की गईं। विश्वविद्यालय रीडरशिप व्याख्यान भी शुरू किये गये। डा० थिबो ने 'प्राचीन पूर्वी देशों के नक्षत्र विज्ञान' विषय पर भाषण दिए और प्रो० शुस्त्र ने आधुनिक

भौतिकी के विकास पर। इन भाषणों से उच्च शिक्षा में लगे छात्रो मे उच्चतर ज्ञान के प्रति जबर्दस्त उत्साह पैदा हुआ।

1908 मे विश्वविद्यालय अपनी 50वी जयंती मना रहा था। सिनेट को सबोधित करते हुए लार्ड मिटो ने कहा कि भारत सरकार अर्थशास्त्र में एक पीठ (Chair) की स्थापना के लिए दस हज़ार रुपये का वार्षिक अनुदान देगी। इसे 'अर्थशास्त्र मे मिंटो प्रोफेसरशिप' नाम दिया गया। आशुतोष ने पंजाब विश्वविद्यालय और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के मेधावी स्नातक प्रो० मनोहर लाल को पहले मिंटो प्रोफेसर के तौर पर नियुक्त किया।

आशुतोष चाहते थे कि विश्वविद्यालय के छात्र पूर्व और पश्चिम के महान् विद्वानों के सपर्क में आये। इसलिए 1908 में विश्वविद्यालय मे विशेष विषयो के लिए विशेष रीडरो की नियुक्ति की प्रथा आरंभ की गई जो बाद में भी जारी रही। डा० हालैड ने भारत के भूगोल पर भाषण दिये। डा० जिलबर्ट वॉकर की विद्वत्तापूर्ण भाषणमाला गणितीय भौतिकी पर थी, दिनेश चन्द्र सेन ने बगाली भाषा और साहित्य के इतिहास पर और प्रोफेसर जे. एन. दासगुप्ता ने 16वी शताब्दी के बंगाल पर व्याख्यान दिये। उन वर्षों मे अन्य रीडरशिप व्याख्यान डा० कालिस, कैम्ब्रिज के डा० फोरसाइथ, जापान के प्रो० यामाकामी, गोठिन्जन के हरमन ओल्डनबर्ग तथा हरमन जेकोबी और पाल विनाग्रादोफ ने दिये। इन व्याख्यानो को उच्च कक्षाओं के छात्रों और कालिजो के अध्यापको ने सुना और इनसे शोध-कार्य में रुचि जागृत हुई।

शोध की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए प्रेमचंद राय चंद छात्रवृत्ति प्रदान करने के नियमो मे परिवर्तन किया गया। आरंभ मे यह छात्रवृत्तियां एक लिखित परीक्षा के परिणामों के आधार पर दी जाती थीं। बाद मे उन्हें कुछ अश तक लिखित परीक्षा और कुछ अंश तक शोध के आधार पर दिया जाने लगा। अब उन्हें पूरी तरह छात्रो द्वारा किये गये शोधकार्य के आधार पर ही दिया जाना था।

दो विख्यात विदेशी विद्वानो की, जिनसे सिनेट ने आशुतोष के आग्रह करने पर उन दिनो विशेष विषयो पर भाषण देने का अनुरोध किया था, भाषण देने से पहले ही मृत्यु हो गई। लेकिन इन भाषणो से सबंधित विषय-सामग्री उपलब्ध थी और विश्वविद्यालय ने भाषणों के प्रकाशन के लिए कदम उठाया। ये दो विद्वान् थे महान जर्मन विद्वान् प्रो० पीशेल जिन्हें प्राकृत भाषाओं के संदर्भ मे भाषा विज्ञान पर व्याख्यान देना था और दूसरे, एक अन्य प्रख्यात विद्वान डा० थिओडर ब्लॉश जिन्हे प्रारंभिक भारतीय इतिहास पर बोलना था।

1908 में विश्वविद्यालय ने भौतिक और प्राकृतिक विज्ञान, दर्शन, इतिहास, भाषा विज्ञान आदि क्षेत्रो में मौलिक कार्य के लिए जयती शोध पुरस्कारो की संस्थापना की। कलकत्ता विश्वविद्यालय के छात्रो और प्राध्यापको से अपने शोध

कार्य के बारे मे बातचीत करने के लिए आशुतोष द्वारा विश्व के सभी भागों के विद्वानो को दिये गये निमत्रण के और डाक्टर आफ फिलासफी की डिग्री शुरू करने के उनके उद्देश्य फलीभूत हुए और विश्वविद्यालय से संबद्ध कालेजों के विख्यात प्राध्यापकों ने अपने-अपने विषयो में ज्ञान मे वृद्धि करने मे अपना योगदान किया जिसके आधार पर उन्हें डाक्टर आफ फिलासफी की उपाधि प्रदान की गई। शुरू-शुरू के ऐसे लोगों में सतीश चन्द्र आचार्य, बृजेन्द्रनाथ सील, हीरालाल हलदर और श्यामदास मुकर्जी भी शामिल थे।

जनवरी 1912 में राजा जार्ज पचम ने विश्वविद्यालय द्वारा उनके स्वागत भाषण का स्तर देते हुए कहा, "आजकल कोई भी विश्वविद्यालय तब तक सपूर्ण नही है जब तक उसमें विज्ञान तथा कला की अधिक महत्वपूर्ण शाखाओ मे अध्यापन कार्य के लिए प्राध्यापकों की व्यवस्था न हो और जब तक वह शोध के विस्तृत अवसर न प्रदान करता हो।" इन शब्दो से प्रोत्साहित होकर आशुतोष इस-अनुरोध के साथ सरकार पर पहुंचे कि विश्वविद्यालय मे दो प्रोफेसर-पदो की स्थापना की जाये जिनमें से एक को, जो भारतीय इतिहास और पुरातत्व से सबन्धित होगी, राजा की यात्रा की स्मृति में 'रेजियस प्रोफसरशिप' कहा जाये और दूसरी, उच्चतर गणित में प्रोफेसरशिप हो जो लार्ड हार्डिग के नाम के साथ जोड़ी जाय। प्राचीन भारतीय इतिहास में प्रोफेसर पद की स्वीकृति नही दी गई और विश्वविद्यालय ने अपने ही कोष से इस पीठ की शुरूआत की। डा० थिबो इस पद को संभालने वाले पहले व्यक्ति थे। लेकिन सरकार ने दो पीठों के लिए वित्त की व्यवस्था की, एक गणित के हार्डिग-प्रोफेसर के लिए और दूसरा, दर्शन मे राजा पंचम प्रोफेसर के लिए। गणित के हार्डिग प्रोफेसर के तौर पर सबसे पहले फ्रांस की पोइतिया विश्व-विद्यालय के प्रोफेसर डा० फ्रेशे चुने गये और दर्शन की पीठ पर डा० बृजेन्द्रनाथ सील को नियुक्त किया गया।

सरकार ने आशुतोष की सेवाओ के सम्मान में दिसम्बर 1911 के दिल्ली दरबार मे उन्हें 'नाइट' की उपाधि प्रदान की। 1912 के अपने दीक्षांत भाषण में लार्ड हार्डिग ने आशुतोष मुकर्जी द्वारा विश्वविद्यालय के कुशल और प्रभावशाली मार्ग-दर्शन की चर्चा की और घोषित किया कि "उनके मार्ग-दर्शन में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने अधिनियम द्वारा बताई गई दिशाओ में बहुत प्रगति की है।"

उन दिनों सरकार 1904 के अधिनियम को लागू करने में आशुतोष के साथ सहयोग कर रही थी और इसके परिणामस्वरूप कुलपति के तौर पर उन्हें चौथी मिआद के लिए नियुक्त किया गया। यह बात कि कुलाधिपति स्वयं भी कलकत्ता विश्वविद्यालय को शिक्षण और शोध से सम्बन्धित विश्वविद्यालय के रूप मे विकास करते हुए देखना चाहते थे, लार्ड हार्डिग के निम्न शब्दो से स्पष्ट है. "मै किसी भी तरह एक ऐसी स्थिति में उच्च शिक्षा के लिए उपलब्ध सुविधाओं को पर्याप्त नही

मान सकता जब कला में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त करने के इच्छुक अनेक छात्रों को जगह की कमी की वजह से वापस भेजना पड़ता है। मुझे इस बारे में संशय नहीं है कि हमारे छात्र और अच्छा कार्य करने की क्षमता रखते हैं। मुझे बताया गया है कि प्रेम चन्द व्यास की तीन शोध छात्रवृत्तियां हाल ही में गणित, रसायन और भारतीय पुरातन पर शोध-प्रबंधों पर दी गई हैं, जिनमें से सभी के बारे में परीक्षकों का मत है कि उनमें विशेष खूबियां है। कोट्स स्मारक पुरस्कार और दरभंगा स्मारक छात्रवृत्तिया जिस तरह प्रदान की गई हैं उनसे लगता है कि चिकित्सा संकाय में क्षमता वाले लोग हैं जोकि शोध कार्य करने के लिए योग्य और इच्छुक है। इसके अलावा ग्रिफिथ स्मारक पुरस्कार के लिए जिस तरह भारी सख्या में निबंध प्रस्तुत किये गये हैं उसमें स्पष्ट हो जाता है कि हमारे बहुत से स्नातक उच्च स्तर के अध्ययन और शोध-कार्य में लगे हुए हैं। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि हम पर्याप्त संख्या में अच्छे एम० ए० निकालें, अन्यथा हमारे कालिजो के लिए कुशल लेक्चररो को ढूंढ़ना या शोध के लिए पर्याप्त व्यवस्था करना कठिन हो जायेगा।" कुलाधिपति ने घोषणा की कि सरकार ने विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसरों और लेक्चररों की नियुक्ति के लिए 65,000 रुपये का वार्षिक अनुदान मंजूर किया है। कलकत्ता विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय की इमारतों, पुस्तकालयो और साज-सामान की व्यवस्था के लिए चार लाख रुपये देने का भी वायदा किया गया। इसके अलावा कलकत्ता में छात्रावास की व्यवस्था के लिए भी दस लाख रुपये दिये जाने थे। यह फैसला किया गया कि 65,000 रुपये के वार्षिक अनुदान को गणित के हार्डिंग प्रोफेसर और दर्शन के जार्ज पंचम प्रोफेसर के वेतन की अदायगी पर और यूनिवर्सिटी लॉ कॉलिज और विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को अनुदान देने पर खर्च किया जाये। चार लाख रुपये के अनुदान में से तीन लाख रुपये की राशि उस छात्रावास के निर्माण पर व्यय की गई जिसे हार्डिंग छात्रावास का नाम देकर यूनिवर्सिटी लॉ कॉलिज के साथ जोड़ा जाना था और एक लाख रुपये विश्वविद्यालय पुस्तकालय में पुस्तकें और साज-सामान खरीदने पर खर्च हुए।

आशुतोष मानवशास्त्र विभाग मे स्नातकोत्तर पर अध्यापन और शोध के विकास में कुछ प्रगति हासिल कर चुके थे। परन्तु विश्वविद्यालय में विज्ञान टैक्नोलाजी विभागो की स्थापना के लिए वे अब तक वित्त प्राप्त नहीं कर पाये थे। जगह, प्रयोगशालाएं, साज-सामान कुछ भी नहीं था। विज्ञान और टैक्नोलाजी से सम्बन्धित यूनिवर्सिटी कॉलिज की स्थापना असंभव लग रही थी। परंतु आशुतोष द्वारा बंगाल के दो विख्यात वकीलो से प्राप्त उदार उपहारों से यह कार्य शीघ्र ही संभव हो गया। जून 1912 में एक विख्यात बैरिस्टर तारकनाथ पालित ने इस उद्देश्य से सात लाख रुपये की परिसम्पत्ति, जिसमें से साढ़े चार लाख रुपये नकद और ढाई लाख रुपये जायदाद के रूप में थे, विश्वविद्यालय के हवाले कर दी कि इस

स्थायी निधि से प्राप्त आय से प्रोफेसरों के दो पद, एक रसायन में और दूसरा भौतिकी में चलाये जायें। आशुतोष ने रसायन के पालित पीठ में नियुक्ति के लिए प्रेसिडेंसी कॉलिज के प्रोफेसर डाक्टर पी० सी० राय को चुना और भौतिकी में पालित प्रोफेसर बनाया भारतीय लेखा-परीक्षा एवं लेखा सेवा के सी० वी० रमन को जो अपने खाली समय में इंडियन ऐसोसिएशन फार द कल्टिवेशन आफ साइंस में शोध कार्य करते थे। प्रो० पी० सी० राय जाने-माने वैज्ञानिक थे और उन्होने कलकत्ता में स्कूल आफ कैमिस्ट्री नामक संस्था की स्थापना की जहां के प्रोफेसर जे० एन० मुकर्जी और डाक्टर जे० सी० घोष जैसे लोगों ने स्वयं अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। प्रोफेसर सी० वी० रमन ऐसे शोध कार्य में संलग्न रहे जिस पर उन्हें भौतिकी का नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। अक्तूबर 1912 में तारकनाथ पालित ने विश्वविद्यालय को विज्ञान और टैक्नोलाजी के विकास के लिए साढ़े सात लाख रुपये का दूसरा अनुदान दिया जिसमें उनका निवास स्थान भी शामिल था। स्थायी निधि से एक लाख रुपये विश्वविद्यालय द्वारा विज्ञान में उच्च शिक्षा के छात्रों को विदेशों में शोध कार्य करने के लिए छात्रवृत्तियां देने के लिए अलग रखे जाने थे।

दूसरे जाने-माने वकील, जिनसे आशुतोष ने अपनी परियोजना के लिए अच्छी खासी निधि प्राप्त की, उनके भूतपूर्व गुरु डा० रासबिहारी घोष थे। अगस्त 1913 में इस महान दानी ने आशुतोष को लिखा: "अब मैंने फैसला किया है कि यूनिवर्सिटी कॉलिज ऑफ साइंस को आपके द्वारा सिनेट की अनुमति से बनाई-गई परियोजना के अनुरूप प्रोत्साहन देने के लिए मैं विश्वविद्यालय को दस लाख रुपये की राशि दूंगा।" चार विश्वविद्यालय स्तर के प्रोफेसर पद निम्नलिखित विषयों में से प्रत्येक के लिए स्थापित किये जाने थे—(अ) व्यावहारिक गणित, (आ) भौतिकी, (इ) रसायन और (ई) कृषि के विशेष संदर्भ में वनस्पति विज्ञान। उपरोक्त के अलावा, निधि से प्राप्त आय में से नौ सौ रुपये वार्षिक मूल्य की आठ छात्रवृत्तियां स्थापित की जानी थी। प्रत्येक प्रोफेसर के साथ उनके मार्ग-दर्शन में शोध करने के लिए दो छात्र जोड़े जाने थे। इन चार पीठो के सर्वप्रथम पदाधिकारी थे—व्यवहारिक गणित में डॉ गणेश प्रसाद, रसायन मे डॉ० पी० सी० मित्रा, भौतिकी में डॉ० डी० एम० बोस और वनस्पति विज्ञान मे डॉ० एस० पी० अघारकर। ध्यान रहे कि अब तक नियुक्त कि गये दस विश्वविद्यालय स्तर के प्रोफेसरों में से पांच बंगाल से बाहर से भर्ती किये गये थे। आशुतोष के नेतृत्व में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने सही राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त किया।

आशुतोष के लिए यह आशा करना स्वाभाविक ही था कि निजी व्यक्तियों से प्राप्त इन उदार अनुदानों के साथ-साथ सार्वजनिक निधि से भी महत्वपूर्ण अनुदान प्राप्त हो सकेंगे। अक्तूबर 1913 में विश्वविद्यालय ने भारत सरकार को अतिरिक्त

वार्षिक अनुदान के लिए आवेदन किया। सरकार ने उत्तर दिया कि विश्वविद्यालय की अर्जी और अन्य मांगों पर उस समय विचार किया जायेगा जब आवश्यक धन-राशि उपलब्ध होगी। यूनिवर्सिटी कॉलिज आफ साइंस प्रतीक्षा नही कर सकता था और आशुतोष ने कुलपति के तौर पर अपनी चौथी मिआद के समाप्त होने से चार दिन पूर्व, 27 मार्च, 1914 को, उसके भवन की आधारशिला रखी। विश्वविद्यालय ने कॉलिज भवन के निर्माण की लागत अपनी आरक्षित निधि से पूरा करने का कदम उठाया। इस अवसर पर अपने भाषण में आशुतोष ने पालित और घोष के उदार अनुदान से मेल खाते उचित अनुदान देने के विषय में भारत सरकार की अनिच्छा पर शोक व्यक्त किया और यह बताया कि किस तरह इन परिस्थितियों में साइंस कॉलिज की प्रयोगशालाओं और साज-सामान से सम्बन्धित मूल योजनाओं में विश्वविद्यालय को कटौती करनी पड़ी है। उन्होंने कहा, "हालांकि हम एक साधारण शुरूआत को चुपचाप स्वीकार करने को मजबूर है, लेकिन हमारी आशाओं की नींव मजबूत है। हम विश्वास के साथ क्रमिक विस्तार की ओर स्वस्थ प्रगति तथा निरंतर सक्रियता के जीवन की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे है क्योंकि हमारा उद्देश्य महान् है और हम इस उत्साहवर्द्धक विश्वास से प्रेरित हैं कि विज्ञान, अपने अंतिम दावों में, जीवित ईश्वर की वाणी को ही दोहराता है।" भारत सरकार द्वारा अतिरिक्त अनुदान के लिए विश्वविद्यालय के अनुरोध पर विचार करने से इंकार करना आशुतोष के प्रति तथा उस विश्वविद्यालय के प्रति तथा एक नये बैर के रवैये का उदाहरण था जिसका विकास सरकार के ही शिक्षा विभाग ने किया था।

विश्वविद्यालय का भाग्य अब संकीर्ण विचारों वाले दफ्तरशाहों के हाथ आ गया था। हेनरी शार्प अब भारत सरकार के शिक्षा विभाग के संयुक्त सचिव थे। वे एक समय में पूर्वी बंगाल और असम प्रांत मे स्कूलों के निरीक्षक रह चुके थे और बाद मे उसी प्रांत के सार्वजनिक शिक्षा निदेशक बन गये थे। आशुतोष के हाथो अपने पुराने प्रमुख बेम्फाइल्ड फुलर की हार को वे भूले नहीं थे और अब आशुतोष और विश्व-विद्यालय को हर तरह से परेशान करने की ताक मे थे। शार्प ने मई 1913 मे विश्वविद्यालय को पहली बार डंक मारा। विश्वविद्यालय ने ए० रसूल, अब्दुल्ला सुहारावर्दी और के. पी. जायसवाल की विश्वविद्यालय मे दो वर्ष के लिए लेक्चरर के तौर पर नियुक्ति की सूचना भेजी थी। शार्प ने इन भर्तियों के खिलाफ एक सख्त नोट लिखा। उनकी आपत्ति इस कथित आधार पर थी कि इन सज्जनों ने राज-नीतिक आंदोलनों में भाग लिया था। शार्प की टिप्पणी से प्रभावित होकर वाइसराय परिषद् के सदस्यों ने नियुक्तियों की मंजूरी नही दी। आशुतोष व्यर्थ में ही यह समझाते रह गये कि नियुक्तियां पूरी तरह शैक्षिक योग्यता के आधार पर की गई थीं और यह कि सरकार ने अब तक ऐसा कोई नियम नहीं बनाया है कि राजनीतिक

आंदोलनों में लगे लोगों को लेक्चरर पद पर नियुक्ति से अलग रखा जायेगा। सिनेट ने बेकार ही सरकार से अपने फैसले पर पुर्नविचार करने का अनुरोध करते हुए प्रस्ताव पारित किये। शार्प ने अपने उच्च अधिकारियो को यह विश्वास दिला दिया था कि आशुतोष 'अक्खड़ और दबंग है' और यह कि विश्ववधिालय ने 'आश्चर्यजनक कृतघ्नता' का प्रदर्शन किया। यह स्पष्ट था कि आशुतोष कुलपति के रूप में पांचवी मिआद के लिए नियुक्त नहीं किये जायेगे। आज्ञाकारी कुलपति नियुक्त करने के उद्देश्य से सरकार ने इस बात पर भी विचार किया कि इस स्थान पर एक पूर्णकालिक वेतन-भोगी व्यक्ति को रखा जाये।[1] दिसम्बर 1913 में सिनेट के सदस्य एक विशेष दीक्षांत समारोह में मिले जिसमें कुलाधिपति लार्ड हार्डिग को उन पर हुए बम आक्रमण के प्रभाव से स्वस्थ हो जाने पर हार्दिक संतोष व्यक्त करते हुए एक अभिनन्दन पत्र दिया जाना था। इस अभिनदन के दौरान सिनेट के सदस्यो ने नये विश्वविद्यालय के विकास में सरकार के सहयोग के महत्व पर जोर दिया। अपने उत्तर में लार्ड हार्डिग ने कहा कि वे नही मानते कि विश्वविद्यालय के लक्ष्यो और उद्देश्यो के प्रति सरकार ने कभी भी सहानुभूति की कमी महसूस होने दी और उस वित्तीय सहायता की ओर ध्यान आकर्षित किया जो विश्वविद्यालय अब तक उनकी सरकार से प्राप्त कर चुका है। विश्वविद्यालय के लिए आवश्यक भावी वितीय सहायता के बारे में उन्होने कोई वायदा नहीं किया। इस दीक्षात समारोह में प्रो० विनोग्रेदोल्फ, प्रो० जेकोबी, प्रो० यंग, डा० रासबिहारी घोष, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्री हेडन और प्रोफेसर सिल्वेन लेवी को डाक्टरेट की मानद् उपाधियो से सम्मानित किया गया।

31 मार्च, 1914 को कुलपति पद पर आशुतोष की चौथी मिआद की समाप्ति पर एक सालिसिटर देवप्रसाद सर्वाधिकारी को, जो सिंडीकेट के सदस्य थे और बंगाल विधान परिषद् मे विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व कर चुके थे, कुलपति नियुक्त किया गया। उसी वर्ष सिनेट के सदस्य के तौर पर आशुतोष की कार्य अवधि समाप्त हुई। पिछले 25 वर्षों के दौरान वे सिनेट के मनोनीत सदस्य रह चुके थे। अपने जीवन में पहली बार अब वे पंजीकृत स्नातको के वोटों पर सिनेट वापस लौटे। पंजीकृत स्नातको ने विश्वविद्यालय को आशुतोष का पूर्ण आकार का तैल चित्र भेंट किया। यूनिवर्सिटी लॉ कॉलिज के प्राचार्य, प्रोफेसरो और छात्रों द्वारा आशुतोष की संगमरमर की अर्ध-प्रतिमा भेंट की गई। विश्वविद्यालय के रेक्टर लार्ड कारमाइकल द्वारा इसका अनावरण किया गया और इसे 'ज्ञान और सत्य की खोज में लगे विश्व के विद्वानो के स्वागत' की मुद्रा में दरभंगा भवन की सीढ़ियों के आगे स्थापित किया गया। इससे पहले, सिनेट ने उन्हें डाक्टर आफ साइस की मानद्

1. एन. के. सिन्हा—आशुतोष मुकर्जी, पृ० 102-103।

उपाधि सेसम्मानित किया ।

आशुतोष द्वारा कुलपति के रूप में विश्वविद्यालय के पुनर्निर्माण के लिए जो जबर्दस्त परिश्रम करना पड़ा उसे केवल तभी समझा जा सकता है जब हम उन वर्षों के दौरान विश्वविद्यालय के निकायों की कार्यवाहियो या विवरण पुस्तकों को पढ़ने का कष्ट करें। और जब हम इस बात को ध्यान में रखते है कि विश्वविद्यालय में वे अपना काम उच्च न्यायालय के जज के कठिन कार्य के अलावा कर रहे थे और हम कष्ट उठाने की उनकी क्षमता पर प्रशसा से विभोर हो जाते हैं। 28 मार्च 1914 को विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह पर अपने भाषण में उन्होंने कहा, "वास्तव में पिछले आठ वर्ष निरंतर संघर्ष के वर्ष रहे हैं। कठिनाइयां और बाधाएं सांप के फन की तरह उठ खड़े होते रहे हैं—हरएक फन तेज और अकसर जहरीली दांतो से लैस रहा है—मैंने अपने आपको कभी भी नहीं बख्शा है। कई वर्षों से उस प्रत्येक घंटे, प्रत्येक मिनट को जो मैं अनिवार्य कार्यो से बचा पाया हूं, जिनमें सबसे पहले मेरे न्यायिक पद के कार्य आते है, मैंने विश्वविद्यालय के काम पर लगाया है। विश्वविद्यालय की कुशलता को बढ़ाने की योजनाएं और कार्यक्रम मेरे उन दिवास्वप्नों का विषय रहे हैं जिनमें एक व्यस्त आदमी भी समय-समय पर खो जाता है, रात को विश्राम करते समय इन्होंने मुझे जकड़े रखा है। विश्वविद्यालय के हितों में मैंने अध्ययन और शोध के सभी अवसरों का बलिदान कर दिया है, संभवतया कुछ हद तक अपने परिवार और मित्रों के हितों की ओर मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि, निश्चय ही, अपने स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति की भी बलि चढ़ा दी है। लेकिन यह न सोचिए कि मैं इन बलिदानो पर पछता रहा हूं। मुझे कई तरह से अपना प्रतिफल मिल चुका है। मुझे आपको याद दिलाने की आवश्यकता नहीं कि उद्देश्य के औचित्य के एहसास से, इस विश्वास से कि जिस लक्ष्य के लिए कोई अपनी सारी शक्ति लगा रहा है और जिसके लिए वह जीवन की सामान्य खुशियों का परित्याग कर रहा है, वह उच्च और पवित्र है, महान सुख प्राप्त होता है।" जिन भावोत्तेजक शब्दों के साथ आशुतोष ने अपना भाषण किया वे यहां बताये जाने के योग्य हैं : "उस समय जब सब कुछ समाप्त हो गया है मेरी आत्मा की गहराइयों में यह अटल विश्वास जीवित है कि पिछले वर्षों के दौरान मैंने और मेरे सहायकों ने अच्छी लड़ाई लड़ी है और यह रोशनी जो प्रकाश-स्तभ की तरह हमें ऊबड़-खाबड़ और अंधियारे रास्ते पर आगे ले जाती रही है, एक छलावे की जलती-बुझती चमक नहीं थी। बल्कि एक ऐसे मंदिर की शुद्ध और पवित्र मशाल थी जो चाहे कितनी ही दूर हो, एक ऐसा मंदिर है जो सत्य और आदर्श की पूजा को समर्पित है। अतः आइये हम साहसी और सतर्क कदमों से इस बात से विश्वास और प्रेरणा प्राप्त करते हुए प्रगति के झंडे को हाथ में लेकर आगे बढ़ें कि इतने सारे सर्वोत्तम और सबसे सच्चे मनुष्य हमारे साथ पूरी सहानुभूति रखते हैं, कि उभरती

हुई पीढ़ी ने उच्च शिक्षा के लिए हमारे द्वारा निर्मित अवसरों का उत्सुकता के साथ ही नही बल्कि उत्साह के साथ लाभ उठाया है, कि हमारे बीच जलाई गई इस नयी कभी न बुझने वाली आग की चिंगारियां भारत के सभी भागों में फैल चुकी हैं और यह कि अन्य विश्वविद्यालय हमारे साहसिक पहल की नकल और अनुसरण के लिए उतावले है। मेरा विचार है कि एक जबर्दस्त नयी भावना को जागृत किया गया है, एक ऐसी भावना जो कभी बुझाई नहीं जा सकेगी, और यह विश्वास वास्तव में ऐसे समय में मेरे लिए अत्यंत सुखदायी है जब मैं उस कार्य से अवकाश प्राप्त कर रहा हूं जो बहुत वज़नदार कारणों से मुझे प्रिय रहा है।"

कुलाधिपति स्वयं उपस्थित नहीं हुए परंतु उन्होंने दीक्षांत समारोह को एक संदेश भेजा जिसमें विश्वविद्यालय के लिए सर आशुतोष मुकर्जी द्वारा किये गये सभी अच्छे कार्यों के लिए कृतज्ञता व्यक्त की गई थी। दीक्षांत समारोह की अध्यक्षता रेक्टर लार्ड कारमाइकल ने की। उन्होने कहा, "भारत सरकार के सदस्यों के अलावा भी बहुत से ऐसे लोग हैं जो सर आशुतोष के प्रति कृतज्ञ है। मैं यह नहीं मानता कि कलकत्ता विश्वविद्यालय से संबंधित कोई भी ऐसा व्यक्ति होगा, बल्कि मुझे संदेह है कि सारे बंगाल में शायद ही कोई ऐसा शिक्षित व्यक्ति होगा, जो उनके प्रति कृतज्ञ न हो। विश्वविद्यालय के लिए उन्होने जो भी कार्य किया है वह बहुत ही अच्छा रहा है और उसे उन्होंने अनथक शक्ति के साथ पूरा किया। सर आशुतोष आठ वर्ष पहले 31 मार्च, 1906 को कुलपति बने। उन तमाम आठ वर्षों में उन्होंने कठिन परिश्रम किया है और उन्होने जिस गर्व के साथ स्वयं अपने हाथों सम्मन्न कार्यों का ज़िक्र किया है वह, न्यायसंगत है। बहुत कम लोगो में बिना रुके काम करते रहने की वह क्षमता है जो सर आशुतोष में है। यह कोई भी नहीं कह सकता कि उन्होंने उच्च न्यायालय के जज के तौर पर अपने कार्यों की अवहेलना की, और मेरा ख्याल है कि वह कार्य अपने आप में बहुत कठिन है—लेकिन इस सारी अवधि में वे अपने विश्वविद्यालय के लिए कुलपति के रूप में कार्य करते रहे जिसके बारे में मुझे अक्सर यह बताया गया है कि यह किसी भी मनुष्य के लिए पूर्णकालिक कार्य है।—उन्होने बड़ी-बड़ी परियोजनाओं को समझने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन किया और उनसे जूझने की कुशलता दिखाई है। कोई भी प्रस्ताव जो उनके सामने पेश हुआ उन्हें इतना दु:साहसपूर्ण या व्यापक नहीं लगा कि वे उस पर विचार करने को तत्पर न होते, किसी क्षण उठने वाला कोई भी मुद्दा इतना छोटा या हल्का नही था कि वे बिना रुके उस पर तुरंत कार्यवाही न करते। मनुष्यों के बारे में, और खासतौर पर बंगाल के शिक्षित वर्ग के बारे में जिनके लिए उन्होंने काम किया है, उनकी जानकारी अपार है। मुझे बताया गया है कि वे एम. ए. की डिग्री के प्रत्येक विशिष्ट धारक को घनिष्ठता से जानते है और कलकत्ता विश्वविद्यालय से इस डिग्री को प्राप्त करने वाला कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिससे वे परिचित न हों।

उनमें कष्ट उठाने की असीम क्षमता है। नीरस काम से बचने का उन्होंने कभी भी प्रयत्न नही किया है। मैंने सुना है कि विवाद में निपुण, फैसले करने में चुस्त और दृढ़ होने के कारण वे बैठकों में सबसे अधिक कुशल अध्यक्ष रहे है। मैं यहां तक कहने की हिम्मत करूंगा कि इसी कारण कभी-कभी जब उनकी बात अन्य लोगों से कुछ अलग होती थी, तो भी वे अपनी बात मनवा ही लिया करते थे। परतु वे हमेशा व्यवहारशील रहे हैं, उन्होने जो भी कार्य हो उसे जल्दी से कराने का लक्ष्य रखा और वे धारणाओ के प्रति उदार रहे हैं,हालांकि उन्हें मनवाना कठिन रहा है।

6

आशुतोष और कलकत्ता विश्वविद्यालय (1914-1923)

भारत सरकार के अधिकारी शीघ्र यह देखकर बहुत घबरा गये कि यद्यपि आशुतोष अब पदस्थ नही रहे थे, फिर भी उनका अब भी वैसा ही प्रभाव और अधिकार था जैसे कि वह अब भी कुलपति हों। अप्रैल 1915 में हेनरी शार्प ने एक नोट लिख कर यह सुझाव दिया कि सबसे अच्छी नीति यह होगी कि 'विश्वविद्यालय को तब तक वित्तीय सहायता से वंचित कर दिया जाये जब तक वह कुछ न कुछ सुधार नही लाती।"[1] विश्वविद्यालय के मामलो मे जांच करने के लिए एक समिति के विषय में भी बातचीत हुई। लेकिन भारत सरकार के शिक्षा सदस्य को ऐसी समिति के नतीजे पर संदेह था। अक्तूबर 1915 में हारकोर्ट बटलर ने लिखा, "सर आशुतोष मुकर्जी के सर्वशक्तिमान होते विश्वविद्यालय में किसी जाच का कोई नतीजा नही निकलेगा।"[2]

भारत सरकार द्वारा अब तक मजूर की गई राशि को छोड़ कर अतिरिक्त अनुदान देना अस्वीकृत कर देने से विश्वविद्यालय मे कठिन स्थिति पैदा हो गई। स्नातकोत्तर विभागो को जारी रखना खतरे मे पड़ गया था। आशुतोष ऐसी समिति के विरुद्ध नही थे। उनका विचार था कि स्नातकोत्तर अध्यापन के बारे में सरकार और विश्वविद्यालय के बीच सम्पूर्ण और स्वतंत्र विचार-विमर्श से स्थिति आसान हो जायेगी। 1916 में शंकरन नायर वाइसराय की कार्यकारी परिषद् के शिक्षा सदस्य बने। इससे स्थिति मे सुधार हुआ। आशुतोष मुकर्जी की अध्यक्षता में कलकत्ता विश्वविद्यालय मे स्नातकोत्तर अध्यापन की व्यवस्था पर पुनर्विचार करने

1. एन. के. सिन्हा—आशुतोष मुकर्जी, पृ० 204।
2. वही।

के लिए एक समिति नियुक्त की गई। समिति को ऐसे सुझाव देने थे जिनसे एम. ए. कक्षाओं पर किये जा रहे वर्तमान व्यय और उपलब्ध साधनों का सर्वोत्तम उपयोग किया जा सके।

अध्यक्ष के अलावा छः सदस्य थे जिनमें से चार यूरोपीय थे। 12 दिसम्बर, 1916 को समिति ने अपनी सर्वसम्मत रिपोर्ट पेश की जिसमें विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर अध्ययन के दृढ़ीकरण की योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की गई। इस समिति ने सिफारिश दी कि कला और विज्ञान में स्नातकोत्तर अध्यापन पूरी तरह विश्वविद्यालय के नियंत्रण में रखा जाना चाहिए। अब तक कलकत्ता में एम. ए. और एम. एस-सी. के अध्यापन के लिए दो कालिज सम्बद्ध थे। समिति ने सिफारिश दी कि एम. ए. और एम. एस-सी. के लिए कलकत्ता के कालिजो को सम्बद्ध करना बंद किया जाये और स्नातकोत्तर अध्यापन का संचालन पूर्णतया विश्वविद्यालय के हाथ मे होना चाहिए। इसका यह तात्पर्य नहीं था कि कालिज के अध्यापक वर्ग को केवल स्नातक कक्षाओं के अध्यापन तक ही सीमित रखा जाये। समिति का विचार था कि वास्तविक अध्यापन में ही नहीं बल्कि विश्वविद्यालय के उच्च शिक्षा के संचालन में भी कालिजों को शामिल करना योजना का आवश्यक तत्व था। चूंकि स्नातकोत्तर अध्यापन को विश्वविद्यालय मे केन्द्रित किया जाना था, अतः विश्वविद्यालय में पूर्णकालिक और वेतन-भोगी अध्यापकों की नियुक्ति आवश्यक थी। स्नातकोत्तर अध्यापन के संचालन और नियंत्रण के लिए पूर्ण अधिकार प्राप्त दो स्नातकोत्तर परिषदों की स्थापना की जानी थी, एक कला के लिए और दूसरी विज्ञान के लिए। प्रत्येक परिषद् में एक कार्यकारी समिति और एक अध्यक्ष होना था। समिति की सिफारिशों पर सिनेट में लंबी बहस हुई परंतु सर आशुतोष की प्रेरित करने की शक्ति ने ही सिनेट की स्वीकृति हासिल की जिसने इसे लागू करने के लिए नियम भी बनाये। 26 जून, 1917 को भारत सरकार ने इन नियमों को अपनी मंजूरी प्रदान की। दो महीनों के अंदर नये प्राधिकरणों का गठन किया गया और 1 सितम्बर, 1917 से इस पद्धति को क्रियान्वित कर दिया गया। आशुतोष को कला के स्नातकोत्तर परिषद् और विज्ञान के स्नातकोत्तर परिषद दोनों का ही अध्यक्ष चुना गया। आशुतोष के लिए यह जबर्दस्त जीत थी। कलकत्ता में अध्यापन कार्य से संबंधित विश्वविद्यालय के विकास में एक ताजा कदम उठाया गया था "जिसकी आधारशिला कुछ ही वर्ष पूर्व शान्ति और सावधानी के साथ रखी गई थी।" समिति के सदस्यो मे बंगाल के सार्वजनिक शिक्षा निदेशक हॉरनेल और प्रेसीडेंसी कालिज के प्राचार्य डब्ल्यू. सी. वर्ड्सवर्थ से स्नातकोत्तर अध्यापन के केन्द्रीकरण की योजना के विरोध की उम्मीद थी। परंतु वे आशुतोष से सहमत हुए और रिपोर्ट में सर्वसम्मति रही। प्रत्येक विषय में आशुतोष ने अपने तर्कों की अकाट्यता से विरोधियों को भी अपनी ओर कर सकने की क्षमता का प्रदर्शन

किया।

सितम्बर, 1917 में भारत सरकार द्वारा यह घोषणा की गई कि, "परिषद् में अपने ओहदे के नाते गवर्नर जनरल ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की दशा और भविष्य की जांच करने के लिए और उसके द्वारा प्रस्तुत समस्याओ के संदर्भ मे रचनात्मक नीति के विषय मे विचार करने के लिए एक आयोग नियुक्त करने का फैसला किया है।" लीड्स विश्वविद्यालय के कुलपति डा० एम. ई. सैडलर आयोग के अध्यक्ष नियुक्त किये गये। जो सात सदस्य नियुक्त किये गये उनमे एक सर आशुतोष भी थे हालांकि वह विश्वविद्यालय के कुलपति नही थे। यह स्पष्ट था कि शंकरन नायर के शिक्षा सदस्य होते हुए शार्प प्रत्येक कार्य अपनी मर्जी से नहीं कर पा रहे थे। नवम्बर, 1917 के पहले सप्ताह में आयोग की बैठक हुई। आयोग के सदस्यों ने गवाहियां ली, भारत के विभिन्न भागों का दौरा किया, लगभग सभी शिक्षा केन्द्रों में गये और मार्च 1919 में भारत सरकार को विस्तृत रिपोर्ट पेश की। सूक्ष्म अवलोकन शक्ति से परिपूर्ण और सुबुद्ध शैली मे लिखी गयी इस रिपोर्ट को बुद्धिमानी का कीर्ति-स्तंभ माना जाता है। रिपोर्ट में आशुतोष के योगदान का सही-सही अनुमान लगाना कठिन है। उन्होंने कोई असहमति नोट नही लिखा। वे प्रांत में शिक्षा पद्धति के दोषो से अवगत थे और उसमें सुधार के लिए रचनात्मकसुझावों का सदैव स्वागत करते थे। सैडलर ने उनके बारे में बहुत अच्छी राय कायम की और शायद यह कहना सही होगा कि देश में शिक्षा के क्षेत्र में आशुतोष की विस्तृत जानकारी से उन्होंने लाभ उठाया। बताया जाता है कि सैडलर आशुतोष के साथ मैदान की ओर उनकी सुबह की सैर में शामिल होते थे और आयोग के कार्य से संबंधित मामलों के बारे में उनसे बातचीत करते थे। आशुतोष ने रिपोर्ट में अवश्य ही महत्त्वपूर्ण योगदान किया होगा। रिपोर्ट पांच खंडों मे है और इसमें शिक्षा का लगभग सारा क्षेत्र शामिल है। अतः हम यहां उसकी सिफारिशो मे से कुछ ही पेश कर सकते है, अर्थात्, वे जिनका आशुतोष की जीवनी से संबंध है।

आयोग ने कलकत्ता में एक असली अध्यापन विश्वविद्यालय बनाने की सलाह दी। कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभाग की उपलब्धियों को रिपोर्ट ने स्वीकार किया और इस प्रकार अप्रत्यक्ष तौर पर आशुतोष का समर्थन किया। रिपोर्ट में कहा गया कि स्नातकोत्तर पद्धति से जांच और शोध की एक नयी भावना पैदा की गई। रिपोर्ट में सिफारिश की गई कि स्नातकोत्तर अध्यापक वर्ग के वेतन में वृद्धि के लिए सरकार द्वारा तुरंत 1,25,000 रुपये प्रतिवर्ष का अनुदान दिया जाना चाहिए। आयोग ने सिफारिश दी कि यदि वित्तीय स्थिति अनुमति दे तो ऐसे 27 नये अध्यापन विभागों की स्थापना की जाये जो कलकत्ता विश्वविद्यालय या उसके कालिजो में नहीं पाये जाते है। आयोग ने अनेक पीठो को आरंभ करने का भी सुझाव दिया जिनमें भारतीय दर्शन और धर्मशास्त्र में, वैदिक भाषा, साहित्य और

संस्कृति में तथा भारतीय मानव-विज्ञान मे पीठ उल्लेखनीय हैं। रिपोर्ट में कहा गया कि ऐसा प्रतीत होता है कि कानून शास्त्र में प्रशिक्षण की पद्धति, 'जो आशुतोष ने संस्थापित की थी', अच्छी तरह काम कर रही है। विश्वविद्यालय में देशी भाषाओ के वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहित किया जाना था। मैट्रिक की परीक्षा के छात्रो को प्रश्नो के उत्तर देशी भाषा या अंग्रेजी मे देने की अनुमति दी जानी थी। गणित और अंग्रेजी को इस नियम से अलग रखा जाना था। आयोग ने शिक्षा के क्षेत्र में एक नये दृष्टिकोण का आग्रह किया। अधिक धनराशि के बिना आवश्यक सुधार नही लाये जा सकते थे।" आयोग के प्रस्ताव ऊपरी तौर पर देखने से लोक राजस्व पर भारी बोझ लग सकते है। परन्तु उनका यह विश्वास था कि उनके द्वारा सुझाये गये व्यय से न केवल नैतिक शक्ति के स्रोतो पर बल्कि देश के आर्थिक कल्याण पर और उसकी नागरिक और औद्योगिक पहलशक्ति पर भी लाभकारी असर पड़ेगा।

यदि इस बात पर जोर दिया जाता कि बंगाल के करदाता इतनी विकसित शिक्षा प्रणाली के लाभ की कीमत चुकाने के लिए बहुत निर्धन थे, तो आयोग का उत्तर था कि बगाल इतना निर्धन है कि वह वर्तमान पद्धति के कारण होने वाले क्षमता के अपव्यय को बर्दाश्त नही कर सकता। यदि सरकार अपने खजाने मे पर्याप्त व्यय करे तो आयोग के अनुसार ऐसा खर्च "दीर्घकाल मे किफायती होगा और साथ ही कई तरह से बंगाल के लिए और बंगाल के जरिए भारत और विश्व के लिए वरदान सिद्ध होगा।"[1] इन शब्दों में और आशुतोष द्वारा जीवन भर माने गये विचारो में असाधारण समानता है।

हालांकि आयोग की नियुक्ति स्पष्टतया विश्वविद्यालय के सुधार और पुनर्गठन के लिए की गई थी, फिर भी सरकार ने आयोग की सिफारिशो को कार्यान्वित करने के लिए कुछ भी नही किया। विश्वविद्यालय की वित्तीय कठिनाइया बनी रही जबकि सरकार ने नये विश्वविद्यालय चालू कर और इस प्रकार उन छात्रों की संख्या को घटाकर जिनके द्वारा दिया जाने वाला परीक्षा शुल्क कलकत्ता विश्वविद्यालय के लिए महत्त्वपूर्ण था, इस कठिनाई में वृद्धि कर दी। फिर भी आशुतोष के परिचालन में स्नातकोत्तर विभागो ने उच्च अध्यापन और शोध के क्षेत्र में अच्छा कार्य करना जारी रखा। कुलपति सर नीलरतन सरकार ने जनवरी 1920 के अपने दीक्षात भाषण मे विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभागों मे किये जा रहे कार्य का इस प्रकार वर्णन किया, "वर्ष के दौरान स्नातकोत्तर विभाग की सबसे मूल्यवान उपलब्धि शायद उसके द्वारा शोध कार्य के लिए दी गई प्रेरणा थी। अध्यापक सामान्यतौर पर जबर्दस्त योग्यता वाले स्नातक है। उनमे से बहुत से ऐसे है जो केवल छात्रों को शिक्षा देने मे ही नही बल्कि स्वयं शोध कार्य करने और शोध कार्य के

1. हन्ड्रेड ईयर्स ऑफ द यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता पृ० 194-195।

निर्देशन में भी व्यस्त है। विज्ञान विभाग में ऐसे 82 प्रकाशित शोध-पत्रों में से जो कि मौलिक खोज पर आधारित थे, 60 अध्यापकों के परिश्रम का फल थे, 14 प्रोफेसरों और छात्रों के संयुक्त प्रयासों का परिणाम थे और 8 छात्रों के स्वतंत्र शोध का नतीजा थे। शोध के क्षेत्र में कला विभाग की प्रगति का लेखा भी कम उत्साह-जनक नहीं है। यह विभाग 20 से अधिक विभिन्न विषयों में शोधकार्य में व्यस्त रहा है। इस शोध कार्य के फलस्वरूप हमारे ज्ञान के भंडार में अवश्य ही महत्त्वपूर्ण वृद्धि होगी। मौलिक खोज पर आधारित 25 शोध पत्र भी प्रकाशित किये गये है। इनके अलावा महत्त्वपूर्ण विषयों पर 15 शोध-पत्र तैयार किये जा रहे हैं। स्नातकोत्तर विभाग के कुछ मौलिक प्रकाशित सामग्री ने यूरोप और अमरीका के विद्वत-समाज का ध्यान आकर्षित किया है। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि विभाग का कार्य ऐसे निष्ठावान अध्यापकों द्वारा किया जा रहा है जिनमें से अधिकाश को अपर्याप्त वेतन ही प्राप्त होता है। वे जिस कार्य में लगे हुए है उसकी प्रेरणा लाभ कमाने की लालसा नहीं बल्कि विद्या के उपार्जन के प्रति प्रेम, शोध की भावना और ज्ञान के प्रचार का उत्साह है। स्नातकोत्तर विभाग बहुत होनहार है। परंतु विभाग अनेक असुविधाओं और कमजोरियों के अंतर्गत कार्य कर रहा है। हमें और अधिक जगह की तथा धनराशि की आवश्यकता है, धनराशि—जो छात्रों के निवास की व्यवस्था के लिए, पुस्तकालय के विस्तार के लिए, प्रयोगशालाओं में वृद्धि करने के लिए, अतिरिक्त आध्यापकों के लिए और विभिन्न दिशाओं में विस्तार के लिए जरूरी है।

आशुतोष यद्यपि सार्वजनिक निधि से आवश्यक सहायता प्राप्त करने में असफल रहे, लेकिन फिर भी सौभाग्य से उन्होंने निजी स्तर के दो स्रोतों से महत्त्वपूर्ण दान प्राप्त किया जिससे कला और विज्ञान में स्नातकोत्तर विभागों के विस्तार में अत्यधिक सहायता मिली।

1913 में डा० रासबिहारी घोष ने यूनिवर्सिटी कालिज ऑफ साइंस की सहायता के लिए दस लाख रुपये का उपहार दिया था। दिसम्बर 1919 में उन्होंने 11,43,000 रुपये की एक और रकम पेश की जिससे प्राप्त आय को केवल टेक्नोलाजी संबंधी शिक्षा और शोध पर खर्च किया जाना था। दो नये विश्वविद्यालय स्तर के प्रोफेसर पद स्थापित किये जाने थे, एक व्यावहारिक रसायन में और दूसरा व्यावहारिक भौतिकी में। चार अतिरिक्त छात्रवृत्तियां शुरू की जानी थी और उपरोक्त प्रोफेसर पदों में हर एक के साथ इनमें से दो-दो छात्रों को लगाया जाना था। प्रोफेसरों के वेतन और छात्रवृत्तियों के भुगतान के बाद निधि की वार्षिक आय में से जो बाकी बचे, उसे उपकरणों, आवश्यक प्रयोगशालाओं, संग्रहालय और कार्यशालाओं के रख-रखाव पर लगाया जाना था, "जिनके लिए पर्याप्त प्रावधान करना बिलकुल आवश्यक है और जिन पर व्यय करने के लिए विश्वविद्यालय की अन्य निधियों में

पर्याप्त धनराशि उपलब्ध नहीं थी।" प्रो. एच. के. सेन और प्रो. पी. एन. घोष जैसे विख्यात वैज्ञानिकों को क्रमशः व्यावहारिक रसायन और व्यावहारिक भौतिकी की पीठों पर नियुक्त किया गया।

कलकत्ता उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार रानी बागीश्वरी देवी बनाम खैरा के कुमार गुरुप्रसाद सिंह के मुकदमे में विश्वविद्यालय को 4,60,000 रुपये की रकम और 3, कमाक स्ट्रीट कलकत्ता की भूमि और उस पर बना मकान प्राप्त होना था, बशर्ते कि इससे रानी के हितों का हनन न हो। रानी के प्रत्यावर्ती हितों को खरीद के वास्ते विश्वविद्यालय को 6,50,000 रुपये देने का प्रस्ताव रखा। न्यायालय ने सर आशुतोष को इस उपहार के उपयोग की योजना बनाने का अधिकार दिया। सर आशुतोष की योजना को सिनेट ने अगस्त, 1921 में स्वीकार किया। विश्वविद्यालय में पांच प्रोफेसरों के पांच पद संस्थापित किये जाने थे, निम्नलिखित विषयों में से प्रत्येक में एक : (1) भारतीय ललित कला, (2) स्वानिकी (Phonetics), (3) भौतिकी, (4) रसायन और (5) कृषि। विश्वविद्यालय की भीषण आर्थिक कठिनाई को देखते हुए आशुतोष ने अपनी योजना में निम्नलिखित शर्तों को शामिल किया :

"कि सिनेट इस बात के लिए स्वतंत्र होगा कि वह निधि में से अधिक से अधिक दो वर्ष के लिए अधिक से अधिक तीन लाख रुपये मूल्य की प्रतिभूतियां स्नातकोत्तर अध्यापन और शोध चालू रखने के वास्ते ऋण प्राप्त करने के लिए गिरवी रख सके।

बशर्ते कि गिरवी रखने की ऐसी कोई कार्यवाही सर आशुतोष की लिखित पूर्व-अनुमति के बिना नहीं की जा सकेगी।"

योजना में जिन तीन लाख रुपयों का जिक्र किया गया था, वह उस समय विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभाग के संचालन में राजस्व और व्यय का अंतर था।

भारतीय ललित कलाओं में पीठ के प्रथम पदाधिकारी प्रसिद्ध कलाकर अबनीन्द्रनाथ ठाकुर थे। सुनीति कुमार चटर्जी को, जो अब राष्ट्रीय प्रोफेसर हैं, भारतीय स्वानिकी और भाषिकी की पीठ पर नियुक्त किया गया। मेघनाद साहा, जो बाद में इंगलैण्ड की रायल सोसाइटी के फैलो बने और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक के नाम से जाने गये, भौतिकी की पीठ पर नियुक्त हुए। जे. एन. मुकर्जी, जिनका नाम भी विश्व के महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिकों में शामिल हुआ, रसायन की पीठ पर नियुक्त किये गये। कृषि में प्रोफेसर का पद नगेन्द्रनाथ गांगुली को प्राप्त हुआ जो कि बाद में कृषि से संबंधित भारत की रायल कमिशन के सदस्य बने।

1919 की भारत सरकार अधिनियम के लागू होने के बाद भारत सरकार ने विश्वविद्यालय से संबंधित समस्त उत्तरदायित्व से अपने आपको मुक्त किया और इस

बंगाल सरकार के हवाले किया। यह कार्य एक कानून के अंतर्गत संपन्न हुआ जो 27 अप्रैल, 1921 को लागू किया गया। इस महत्त्वपूर्ण कदम को उठाते हुए भारत सरकार ने विश्वविद्यालय की वित्तीय ज़िम्मेदारी को पूरा करने में बंगाल सरकार की सहायता करने की कोई व्यवस्था नहीं की। अब से पहले की तरह रेक्टर नहीं बल्कि बंगाल का गवर्नर ही विश्वविद्यालय का कुलाधिपति होना था।

5 फरवरी, 1921 को विश्वविद्यालय ने उच्च शिक्षा के विकास के लिए बंगाल सरकार से वित्तीय सहायता की मांग की। उसने स्नातकोत्तर अध्यापकों के वेतन पर खर्च को पूरा करने के लिए दिये गये एक लाख 75 हजार रुपये के अनुदान के अलावा दस लाख रुपये की राशि के अनुदान की प्रार्थना की। 15 मार्च, 1921 को बंगाल सरकार ने विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभाग में सुधार के के लिए 1 लाख 75 हज़ार रुपये का अनुदान दिया। उसने टेक्नोलाजी संबंधी अध्ययन के लिए भी दस हज़ार रुपये की राशि का अनुदान दिया। इसके साथ ही सरकार ने विश्वविद्यालय को यह भी सूचना दी कि अगर उसने इसके अतिरिक्त और अनुदान की मांग की तो वह उसे पूरा नहीं कर पायेगा। विश्वविद्यालय को यह भी बताया गया कि वित्तीय कठिनाइयो के कारण बंगाल सरकार सैडलर आयोग की सिफारिशों को लागू नहीं कर सकेगी।

उस समय जबकि विश्वविद्यालय इन कठिनाइयो से गुज़र रहा था, असहयोग आंदोलन के कारण स्थिति और भी बिगड़ गयी। विद्यार्थियों ने स्कूल और कालिज छोड़ना और 'गुलाम खाना' के द्वारा ली जा रही परीक्षाओं का बहिष्कार करना शुरू कर दिया। परीक्षा शुल्क से प्राप्त आय गिरने लगी। नियमो के अंतर्गत इस शुल्क निधि में से एक-तिहाई रकम स्नातकोत्तर विभाग पर खर्च की जाती थी। अब स्नातकोत्तर विभाग के लिए आय के इस साधन में कमी आ गई। कई महीनों तक स्नातकोत्तर अध्यापको ने बिना वेतन के काम किया। अध्यापकों की विश्वविद्यालय के प्रति और व्यक्तिगत तौर पर सर आशुतोष के प्रति वफादारी के कारण ही स्नातकोत्तर विभाग को पूरी तरह से नष्ट हो जाने से बचाया जा सका। यह बात स्मरणीय है कि इन अध्यापकों की ज़बर्दस्त शैक्षिक उपलब्धियां थीं और वे केवल मांगने भर से सरकार के अंतर्गत या नये खुल रहे विश्वविद्यालयों मे लाभप्रद नौकरियां प्राप्त कर सकते थे।

आशुतोष ने हज़ारों की संख्या में छात्रो द्वारा स्कूलो और कालिजों के छोड़ने को राष्ट्रीय विपत्ति माना। वे किसी भी राजनीतिक नेता से कम देशभक्त नहीं थे पर लक्ष्य को प्राप्त करने का उनका तरीका अलग था। उनका मत था कि शिक्षा का विस्तार स्वतंत्रता प्राप्त करने की सबसे अचूक तैयारी थी। उन्हें औसत बंगाली परिवार की आर्थिक स्थिति का ज्ञान था और वे इस बात के कायल थे कि यदि शिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया को एक बार रोक दिया जाये तो अक्सर वह दोबारा

शुरू नहीं होती है। यह लड़के जो बेकार हो गये थे, भविष्य मे क्या करेंगे ? असह-योग आंदोलन की चरम सीमा पर विद्यार्थियो को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "आप एक स्वदेशी विश्वविद्यालय चाहते हैं। क्या कलकत्ता विश्वविद्यालय आपके लिए स्वदेशी विश्वविद्यालय नही है ? सिनेट और सिंडीकेट दोनो बंगालियो के हाथो मे है। बगाल के सपूतों द्वारा दिये गये दान से ही इसका विकास हो रहा है। सभी लोग राष्ट्रीय पोशाक मे है। यहा कोई विदेशी प्रभाव नहीं है। क्या आपको इस उच्च कोटि की देशभक्ति का, इस उदार बलिदान का अनादर करना चाहिए ?"

बगाल के गवर्नर लार्ड रोनल्डशे ने 24 मार्च 1921 को विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह मे बोलते हुए सर आशुतोष के मार्ग-दर्शन मे विश्वविद्यालय द्वारा राष्ट्र के हित मे किये जा रहे महत्वपूर्ण कार्य की ओर ध्यान आकर्षित किया और सर आशुतोष को कुलपति का पद स्वीकार करने के लिए आमंत्रित करने के अपने इरादे की घोषणा की। उन्होने कहा, "निश्चय ही, आपको यहां पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति को सर्वथा उपयुक्त सम्मान देने के वास्ते किये जा रहे शानदार प्रयासो पर अभिमान होगा। विख्यात भारतीय विद्वानो द्वारा उच्चतर सस्कृत की अनेक शाखाओं मे, जिनमे प्राचीन भारतीय ज्ञान का विस्तृत क्षेत्र शामिल है, पाली मे जिनमे बौद्ध अध्ययन का व्यापक क्षेत्र समाविष्ट है, इस्लामी अध्ययन में जिसमे धर्म-विज्ञान, साहित्य, साहित्य-शास्त्र, काव्य-शास्त्र, व्याकरण, दर्शन और विज्ञान शामिल है, भारत की देशी भाषाओ में और प्राचीन भारतीय इतिहास और अध्ययन के विस्तृत पाठ्यक्रम मे उच्च स्तर के अध्ययन के साथ-साथ शोध-कार्य भी किया जा रहा है। निश्चय ही ऐसे प्रत्येक भारतीय का जिसे अपने देश से सच्चा प्रेम है, उस व्यक्ति के प्रति आभार और समर्थन होना चाहिए जिसने भारत मे ज्ञान के लिए इतना कुछ किया है। वह भारतीयो मे भारतीत व्यक्ति है, सर आशुतोष मुकर्जी। परन्तु सर आशुतोष मुकर्जी का आपके समर्थन पर अधिकार केवल इस बात पर आधारित नही है कि उन्होने स्नातकोतर अध्यापन और शोध के इस महान विभाग का निर्माण किया। वे उस विश्वविद्यालय आयोग के सदस्य भी थे जिसकी सिफारिशों से उच्च शिक्षा की वर्तमान प्रणाली में बहुत से सुधारों का शुरू होना निश्चित है और जिससे विशेष रूप से दो दिशाओं से परिवर्तन लाया जा सकेगा—अर्थात् व्यवसाय सम्बन्धी शिक्षा के पाठ्यक्रमों का विकास कर और समस्त प्रणाली को अधिक विशिष्ट रूप से भारतीय मार्ग पर डाल कर।" उन्होंने लोगों से अपील की कि वे कुलपति के रूप मे सर आशुतोष का समर्थन करे क्योंकि "निश्चय ही कोई भी अन्य व्यक्ति आपके विश्वविद्यालय के ढाचे को सर्वोत्तम और सही तौर पर राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का रूप देने मे उनसे अधिक योग्य नही है।"

सात वर्षों के अंतराल के बाद सर आशुतोष ने 4 अप्रैल, 1921 को एक बार फिर कुलपति का पद सभाला। हालाकि जब वे कुलपति नही थे तब भी विश्वविद्यालय के मामलों के निर्देशन का कार्य उन्ही के हाथो मे था। वह सिनेट के और सिंडीकेट के, सकायों के और अधिकतर निकायो के सदस्य बने रहे। इसके अतिरिक्त वह कला और विज्ञान के दो स्नातकोत्तर परिषदो के अध्यक्ष भी थे। इन वर्षों के दौरान उन्होने विश्वविद्यालय मे स्नातकोत्तर अध्यापन पर ध्यान केन्द्रित किया और स्नातकोत्तर विभाग को संगठन प्रदान किया। निजी स्रोतों के उदार उपहारो की सहायता से अनेक प्रोफेसर पदों और छात्रवृत्तियों की स्थापना की गई। स्नातकोत्तर विभाग के अध्यापक वर्ग में उन्होंने सारे भारत से विद्वानों को भर्ती किया था। यूरोपीय विश्वविद्यालयो के अपने-अपने विषयों के सर्वाधिक प्रतिष्ठित विद्वानो द्वारा रीडरशिप व्याख्यान दिये गये थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय लगभग सर्वदेशीय विश्वविद्यालय बन गया था। शोध को उनके हाथो बहुत प्रोत्साहन मिला और स्नातकोत्तर विभागों में अध्यापक और छात्र ज्ञान की सीमाओ के विस्तार में लगे हुए थे।

आशुतोष की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों मे से एक थी—विश्वविद्यालय की एम० ए० की परीक्षाओं के लिए भारतीय भाषाओं में पाठ्यक्रमो की शुरूआत। उनका सदैव ही विश्वास रहा कि, "यदि भारतीय विश्वविद्यालयों को स्थायी तौर पर राष्ट्रीय जीवन में शामिल करना है तो उन्हें भारत की देशी भाषाओं के प्रतिरोध दावे को उदारता के साथ उपयुक्त मान्यता देनी चाहिए।" हमने पिछले अध्यायो में देखा था कि किस प्रकार 1891 में सिनेट के युवा सदस्य के रूप मे आशुतोष ने विश्वविद्यालय के सामने एम० ए० स्तर तक विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम मे भारत की देशी भाषाओं को स्थान देने के आशय के प्रस्ताव रखे थे और किस प्रकार वे असफल रहे। उन्होंने अपने हृदय को प्रिय इस एक लक्ष्य का जीवन भर अनुसरण किया और जब 1904 के अधिनियम के परिणामस्वरूप उन्हें नये नियमो कि रूपरेखा तैयार करने को कहा गया तो उन्होंने विश्वविद्यालय की मैट्रिक, इंटरमीडिएट और बी० ए० की परिक्षाओं के लिए भारत की देशी भाषाओं को अनिवार्य विषय बना दिया।

1913 में "भारत की सबसे अधिक प्रगतिशील भाषा के निष्ठावान और आजीवन उपासक" रवीन्द्रनाथ ठाकुर को डाक्टर आफ लिटरेचर की उपाधि से सम्मानित कर आशुतोष ने राज्य की देशी भाषा पर शैक्षिक मान्यता की मुहर लगा दी।

1918 में विश्वविद्यालय ने सर आशुतोष की पहल पर भारत की सभी देशी भाषाओं की, विकास के बिलकुल प्रारंभिक चरण से आधुनिक काल तक की प्रातिनिधिक चयनिका से संबन्धित पुस्तकमाला तैयार करने की एक योजना को मजूरी

दी। इसका उद्देश्य मास्टर आफ आर्ट्स की डिग्री के लिए इन्हें विषयों के रूप में शामिल करना था। 1919 में आशुतोष ने विश्वविद्यालय मे भारत की देशी भाषाओं का स्नातकोत्तर विभाग चालू किया। किसी भी भारतीय विश्वविद्यालय के इतिहास में पहली बार किसी भारतीय के लिए वह संभव हो सका कि वह अपनी मातृभाषा के और अपने सहभारतीयों की मातृभाषा के ज्ञान के आधार पर उच्चतम डिग्री प्राप्त कर सके। योजना के अंतर्गत यह अनिवार्य था कि विद्यार्थी को दो देशी भाषाओ का ज्ञान हो' यानी अपनी मातृभाषा का सपूर्ण ज्ञान और एक दूसरी देशी भाषा का कुछ कम विस्तृत ज्ञान। विद्यार्थी के लिए यह भी आवश्यक था उसे किन्हीं दो ऐसी भाषाओं का व्यावहारिक ज्ञान हो जो भारत की देशी भाषाओं का आधार हों, जैसे पाली, प्राकृत और फारसी। प्रमुख भाषाओं के तौर पर बागला, हिन्दी, उर्दू और असमिया को मान्यता दी गई। पूरक भाषाओं के तौर पर जिन भाषाओ को मान्यता दी गई, वे थे बगला, असमिया, ओड़िया, हिन्दी, उर्दू, मैथिली, मराठी, तेलुगू,, तमिल, कन्नड़, मलयालम और सिंहली। इसके अतिरिक्त विद्यार्थी के लिए अपने विशिष्ट देशी भाषा से सम्बन्धित भाषा विज्ञान का तुलनात्मक ज्ञान भी अनिवार्य था। प्रांतीयता की संकीर्ण दीवारों पर यह योजना एक प्रभावकारी प्रहार थी। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि अन्य लोगों पहले से बहुत से ही आशुतोष राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में कार्य कर रहे थे। इसके अलावा विश्वविद्यालय फ्रांसीसी, जर्मन, चीनी, जापानी और तिब्बती भाषाओं के अध्यापन का कार्य भी प्रारंभ किया।

परंतु उस स्थिति में जबकि एक संगदिल सरकार विश्वविद्यालय को भूखा मार रही थी, आशुतोष इस महान राष्ट्रीय कार्य को किस प्रकार पूरा कर रहे थे ? आशुतोष ने स्वयं वर्णन किया है कि उन्हें समस्त भारत से कितनी उदार और सहानुभूतिपूर्ण प्रतिक्रिया प्राप्त हुई और उसी की सहायता से वे अपनी कठिनाइयों का सामना कर सके। उन्होंने कहा,—"भारत के विभिन्न भागों के विद्वानों ने इस महान राष्ट्रीय कार्य को पूरा करने में सहयोग देने के हमारे निमंत्रण को सहर्ष स्वीकार किया है।—अनेक सुसंस्कृत लोग विश्वविद्यालय की सहायता के लिए आगे आये है। सोनपुर के महाराजा ने—उड़िया चयनिका के प्रकाशन की लागत में उदारतापूर्वक योगदान किया। इंदौर के होल्कर ने मराठी चयनिका के प्रकाशन में सहयोग देने में अपनी तत्परता व्यक्त की है। 'जेन्ड आवेस्टा' के चुने हुए अंशो के प्रकाशन की लागत को पूरा करने में श्री आर० डी० मेहता ने प्रर्याप्त राशि का दान किया है। श्री भोला नाथ बरुआ ने असमिया चयनिका के प्रकाशन की लागत को पूरा करने मे दस हजार रुपये के उदार दान का प्रस्ताव रखा है—श्री सनत कुमार मुकर्जी ने बगला पाण्डुलिपियों का विशाल और मूल्यवान संग्रह भेंट किया है जिससे भारत की देशी भाषाओं में शोध का एक विस्तृत क्षेत्र सामने आयेगा। दीनाजपुर के

श्री टी० चौधरी मैथिली में लेक्चरर के एक पद का खर्च दे रहे हैं जबकि राजा कीर्त्यानंद सिह और उनके सहभागी मैथिली में शोधकार्य के लिए बनेलिया श्रीनगर लेक्चरर पद का खर्च दे रहे है। मैमनसिह के श्री गोपालदास चौधरी बंगला मे लेक्चरर पद का व्यय उठा रहे है और सोनपुर के महाराज ने उडिया में लेक्चरर पद के लिए आवश्यक धनराशि की व्यवस्था की है।" आशुतोष जैसा व्यक्ति ही इतनी सहायता प्राप्त कर सकता था।

अप्रैल 1921 मे कलकत्ता विश्वविद्यालय ने बंगला भाषा मे लिखे गये तथा सिडीकेट द्वारा साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र मे सर्वाधिक विख्यात माने गये मौलिक योगदान को दो वर्ष में एक बार दो सौ रुपये के स्वर्ण पदक से सम्मानित करने के उद्देश्य से सर आशुतोष द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों के रूप मे दिये गये तीन हज़ार रुपये का उपहार सधन्यवाद स्वीकार किया। पदक को उनकी मां के नाम पर 'जगत्तारिणी पदक' कहा जाना था। इस पदक को सबसे पहले डा०. रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने प्राप्त किया। अपने स्नातकोत्तर विभाग मे स्थानों को भरने के लिए आशुतोष हमेशा भारत के सबसे अधिक गुणी लोगों की तलाश मे रहते थे। 1921 में ब्रजेन्द्रनाथ सील मैसूर विश्वविद्यालय के कुलपति नियुक्त किये गये और आशुतोष ने उनके स्थान पर दर्शन के जार्ज पंचम प्रोफ़ेसर पद के लिए सर्वपल्ली राधाकृष्णन की सेवाएं प्राप्त कीं। अपने जीवनकाल में बाद में प्रो० राधाकृष्णन ने जो जबर्दस्त ख्याति प्राप्त की उससे यह सिद्ध होता है कि आशुतोष में गुणों की पहचानने की कितनी अधिक क्षमता थी।

वर्ष 1919 में आशुतोष ने डाक्टर की उपाधि प्राप्त करने के 25 वर्ष पूरे किये। उनके प्रशंसकों ने इस अवसर पर एक स्मरणोत्सव आयोजित करने के बारे में सोचा। अत: इस अवसर को अत्यंत उपयुक्त रूप से मनाने के बारे मे विचार करने के लिए विश्वविद्यालय मे अंग्रेजी के प्रोफ़ेसर डा० हेनरी स्टीफेन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। यह निर्णय लिया गया कि कला और साहित्य, विज्ञान और पूर्वदेशीय विद्या से सम्बन्धित एक पुस्तकमाला तैयार करने की व्यवस्था की जाये जिसे आशुतोष के प्रति उनके आदर, स्नेह और श्रद्धा के प्रतीक के तौर पर उन्हें भेंट किया जायेगा। इस पुस्तकमाला को कुलाधिपति लार्ड रोनल्डशे ने 18 मार्च, 1922 को आयोजित एक दीक्षांत समारोह में औपचारिक ढंग से सर आशुतोष को भेंट किया। यह 'रजत जयंती पुस्तकमाला' विश्वविद्यालय के सदस्यों द्वारा ज्ञान के क्षेत्र मे योगदान का अद्वितीय संग्रह है। "देश में शिक्षा और ज्ञान के लिए उनकी महान् और विशिष्ट सेवाओं की स्मारिका के तौर पर इससे अधिक उपयुक्त किस्म का उपहार नहीं पाया जा सकता था।"

इस दीक्षांत समारोह में लार्ड रोनल्डशे ने उनके द्वारा विश्वविद्यालय के कुलाधिपति के रूप में और प्रेसीडेंसी के गवर्नर के रूप में अदा की जा रही दोहरी

भूमिका की कठिनाइयों की ओर ध्यान आकृष्ट किया। विश्वविद्यालय के कुलाधिपति के तौर पर उन्होंने स्नातकोत्तर विभाग द्वारा किये जा रहे कार्य की निस्संकोच प्रशंसा की और कहा कि यद्यपि स्नातकोत्तर कार्य की लागत अधिक है लेकिन फिर भी यह देश के लिए अत्यंत उपयोगी है और वह लोग जो स्नातकोत्तर अध्यापन पर खर्च के खिलाफ है, इसे संकीर्ण दृष्टि से देख रहे हैं। परंतु गवर्नर के रूप में उन्होंने विश्वविद्यालय के कार्य-कलापों में सावधानी के साथ विस्तार करने की सलाह दी क्योंकि सार्वजनिक निधि से सहायता प्राप्त करना कठिन था। कुलाधिपति के रूप में उन्होंने कहा, "पिछले वर्षो में विश्वविद्यालय के इतिहास में सबसे बड़ी बात निस्संदेह ही स्नातकोत्तर अध्यापन परिषद् की स्थापना है। उस समय विश्वविद्यालय के रेक्टर के तौर पर मैंने इस योजना को अपना हार्दिक समर्थन दिया क्योंकि मुझे ऐसा लगता था कि उसका लक्ष्य विश्वविद्यालय के तत्वावधान में कलकत्ता में ज्ञान और शोध के एक वास्तविक केन्द्र की स्थापना करना और देश की प्राचीन संस्कृति में रुचि को पुनर्जीवित कर बहुत कुछ करना है।—मेरा ध्यान पुराने समय के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों की ओर था, जैसे उदाहरण के तौर पर नालंदा। और मेरी आंखों के सामने भारतीय साम्राज्य के सबसे महान् और अधिक आबादी वाले नगर में एक उभरते हुए आधुनिक नालंदा का चित्र आने लगा। उन्होंने यह भी समझाया कि आम आदमी उच्च शिक्षा पर होने वाले व्यय को अनावश्यक क्यों समझता है। उनके विचार में यह एक संकुचित मत था। "यह इस बात की कल्पना करता है कि स्नातकोत्तर विभाग का कार्य केवल उन थोड़े से लोगों के लाभ के लिये ही है जोकि उसमें भाग लेते हैं। ऐसा विचार निश्चय ही तर्कसंगत नहीं है। स्नातकोत्तर कार्य के परिणाम सारे देश पर प्रभाव डालते हैं। विश्वविद्यालय का यही वह विभाग है जिसे ऐसा कर्त्तव्य सौंपा गया है जिसे बहुत से लोग विश्वविद्यालय का सर्वोच्च कर्त्तव्य बताते है, यानी कुल मानवीय ज्ञान में वृद्धि करने का। उदाहरण के तौर पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वैज्ञानिक आविष्कारों से किसी भी राष्ट्र की समृद्धि में जबर्दस्त वृद्धि हो सकती है। इसके अलावा, मैं यह नहीं मानता कि मानव विचारों की प्रगति में योगदान कर सकने की स्थिति में पहुंचे बिना भी कोई राष्ट्र विश्व के अग्रवर्ती लोगों की श्रेणी में उच्च स्थान प्राप्त कर सकता है।" यह आशुतोष के द्वारा किये गये कार्यो का पूरा समर्थन था। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा, "मैं यह अस्वीकार नहीं करता कि एक निर्धन देश में सार्वजनिक निधि से इस तरह के अध्ययन के लिए धन जुटाने की स्पष्ट सीमाएं हैं। मैं आशा करता हूं कि विश्वविद्यालय की वर्तमान कठिनाइयों में विधानमंडल उसके लिए कुछ अतिरिक्त अंशदान करने को तैयार होगा। परंतु स्वयं विधानमंडल ही, अत्यंत अल्प साधनों के बावजूद, बहुत-सी अत्यंत आवश्यक मांगों का सामना कर रहा है। और इन परिस्थितियों में मुझे लगता है कि विश्वविद्यालय

को इस बात पर विचार करना पड़ेगा कि क्या वह ऐसे प्रत्येक विषय में स्नातकोत्तर अध्यापन की व्यवस्था करने को बाध्य है जिसमें वह परीक्षा लेने और डिग्रियां देने को तैयार हैं।"[9]

परन्तु विधानमंडल ने विश्वविद्यालय को कोई अतिरिक्त वित्तीय सहायता नहीं दी। 1922-23 के बजट में ढाका विश्वविद्यालय के लिए 9 लाख रुपयों का प्रावधान था जबकि कलकत्ता विश्वविद्यालय को उसके 1,41,000 रुपयों के वार्षिक आवर्ती अनुदान के अलावा कुछ भी नहीं मिलना था। मार्च, 1923 को शिक्षा मंत्री प्रवास चंद्र मित्रा ने बंगल विधान परिषद् के सम्मुख अपने भाषण में घोषणा की कि विश्वविद्यालय में पांच लाख रुपये का घाटा "पिछले वर्षों में लापरवाही के साथ विश्वविद्यालय में किये गये विस्तार" का परिणाम है। उन्होंने कहा कि विश्वविद्यालय का वित्तीय प्रबंध खेदजनक है। कलकत्ता विश्वविद्यालय का अधिकारी वर्ग स्नातकोत्तर अध्ययन के विकास के अपने प्रशंसनीय उत्साह से प्रेरित थे। परन्तु निश्चय ही—उन्हें यह मालूम होना चाहिए था कि इस तरह के मसले से निपटने का वित्तीय दृष्टि से मज़बूत तरीका केवल भारत सरकार से खैरात प्राप्त होने की आशा पर ही कार्य प्रारंभ करना नहीं था।—विस्तार के उत्साह में मामलों के वित्तीय पहलू की अनदेखी करना लगभग अपराध होने की सीमा तक की लापरवाही थी।—मुझे कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान कुलपति (आशुतोष मुकर्जी), जोकि न केवल प्रांत के बल्कि सारे देश के कुशलतम लोगों में से एक है, मेरे परामर्श के विवेक को समझेंगे और यदि वे ठान लें तो कलकत्ता विश्वविद्यालय की मुश्किलें आसान हो जायेंगी।"

18 मार्च, 1922 के दीक्षांत भाषण में आशुतोष ने स्नातकोत्तर विभाग के औचित्य को पूरी तरह समझाया। उन्होंने बताया कि विश्वविद्यालय के अध्यापन विभाग साम्राज्य विधानमंडल के 1904 के अधिनियम के अनुसार शुरू किये गये थे और 1917 में सरकार की अनुमति से ही स्नातकोत्तर अध्यापन को सुदृढ़ बनाया गया। उन्होंने एक-एक विभाग पर किये गये व्यय को अलग-अलग उचित सिद्ध किया। उन्होंने दावा किया कि "विश्वविद्यालय के विकास की योजनाएं विद्यालय—न तो अनियमित रही हैं और न ही अनावश्यक। राष्ट्रीय जीवन में विश्वविद्यालय के वास्तविक कर्त्तव्य की चट्टान जैसी पक्की अवधारणा ही उनका ठोस आधार है।—स्वतंत्रता, स्वास्थ्य और सम्पत्ति के क्षेत्रों में विश्वविद्यालय जनकल्याण में योगदान कर सकता है,बशर्ते कि वह जनमत के नेताओं के रूप में और कानून, चिकित्सा, इंजीनियरी और वाणिज्य से लेकर वास्तुकला, कृषि, बैंकिंग, पत्रकारिता और सार्वजनिक प्रशासन तक के दिमागी काम वाले पेशों को अपनाने के लिए उदार शिक्षा से सम्पन्न पुरुषों और स्त्रियों की कतारें आगे भेजता हो। विकास के सभी पहलुओं में राष्ट्र की सेवा में काम आने के लिए बनाया गया ऐसा विश्वविद्यालय

अपने विभिन्न कार्यकलापों से बुरी तरह अलग होकर केवल संकीर्ण या निर्धारित अध्यापन तक ही सीमित नही रह सकता ।

23 अगस्त, 1922 को बंगाल सरकार ने विश्वविद्यालय को सूचित किया कि वह 2,50,000 रुपये का अतिरिक्त अनुदान देगा, परंतु यह अनुदान आठ शर्तों के अधीन दिया जायेगा। सिनेट ने सरकार के पत्र के साथ-साथ उसमें लगाई गई शर्तों पर विचार करने के लिए 9 सितंबर, 1922 को आशुतोष मुकर्जी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। सिनेट की 2 दिसम्बर, 1922 की बैठक मे समिति की रिपोर्ट पर बहस की गई। प्रो० पी० सी० राय ने, जो समिति के सदस्य थे, रिपोर्ट को स्वीकार करने का प्रस्ताव रखते हुए कहा, "सरकार के पत्र का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि सरकार विश्वविद्यालय की मौजूदा आर्थिक संकट का लाभ उठाते हुए इसके मामलो पर कुछ ऐसा नियंत्रण प्राप्त करना चाहती है जैसा 1904 के भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम का इरादा ही नहीं था।—जो शर्तें थोपी जा रही हैं वह इतनी अपमानजनक और हमारे आत्मसम्मान के लिए इतनी कड़वी तरह से अनादरपूर्ण हैं कि हमारे लिए बेहतर होगा कि हम संस्था को बंद कर दें, विश्वविद्यालय के दरवाजों पर ताला लगा दें और सारे देश से समर्थन प्राप्त करें।—हमारे राष्ट्रीय विकास के क्षितिज में एक गंभीर संकट की विशाल छाया है। हमारे सामने राष्ट्रीय विपदा का जोखिम है । हमें सावधान होना चाहिए और यह ध्यान में रखना चाहिए कि हम शोरबे की एक खुराक के बदले में अपनी महान विरासत न दे दें ।"

प्रस्ताव का समर्थन करते हुए प्रिंसिपल ह्वेल्स ने कहा, "यह निस्संदेह एक ठोस सिद्धांत है कि कोई भी संस्था अपनी आय से अधिक राशि व्यय न करे। यह बात व्यक्तिगत संस्थाओं पर और साथ ही सरकार पर भी लागू होती है। जब हम यह सुनते है कि बंगाल सरकार का अपना घाटा 87 लाख रुपये के आसपास है और जब वह हमारे पास आती है और अहंकार भरे हाव-भाव से हमें उन कुछ लाख रुपयों पर, जो हमने अपनी आय से अधिक खर्च किये है, दंड देने की कोशिश करती है तो यह उत्तर देना सहज मानवीय प्रकृति है कि, 'चिकित्सक स्वयं अपनी चिकित्सा करे।'—यदि हम झुक जाते हैं तो यह विश्वविद्यालय के तौर पर हम पर रखी गई आस्था के प्रति विश्वासघात होगा—'। इस अवसर पर सिनेट में सर आशुतोष का भाषण उत्कृष्ट था। उन्होने कहा, "मुझ पर विश्वास कीजिए कि जब तक मुझ में खून का एक भी कतरा है, मैं इस विश्वविद्यालय का अपमान किये जाने में शामिल नहीं हूंगा। विश्वविद्यालय गुलामों का कारखाना नहीं बनेगा। हम यथार्थ रूप से विचार करना चाहते हैं। हम स्वाधीनता का पाठ पढ़ना चाहते है। हम उभरती हुई पीढ़ी को उच्च और उदात्त विचारों और भावनाओं से प्रेरित करना चाहते हैं। हम सरकार के सचिवालय का अंग नहीं बनेंगे। यह न भूलिए कि जो प्रस्ताव रखा

गया है वह निरंतर अनुदान तो क्या मियादी अनुदान भी नही है। प्रस्ताव क्या है? ढाई लाख? और आप धूमधाम से प्रस्ताव रखते हैं कि तुम इसके बदले मे अपनी स्वतंत्रता का सौदा कर लो—यदि आप मुझे एक हाथ से गुलामी दें और दूसरे से पैसा, तो मै इस उपहार का तिरस्कार करूंगा। हम यह धनराशि नही लेंगे। हम कटौतिया करेंगे और अपने साधनों के अनुरूप निर्वाह करेंगे। हम सारे बंगाल के हर द्वार पर जायेंगे। हम बंगाल के लोगों के अंत:करण को जागृत करेंगे—और बंगाल के लोगों को ज्ञान के उनके मुख्य अधिष्ठान को कुशलता की स्थिति मे चलाने के उत्तरदायित्व का स्पष्ट अनुभव करायेंगे—हमारे स्नातकोत्तर विभाग के अध्यापक भूखे मर जायेंगे लेकिन अपनी स्वतंत्रता का त्याग नही करेंगे। मैं आप सबसे अपील करता हूं कि सिनेट के सदस्य के नाते आप सब अपने विश्वविद्यालय के अधिकारो के लिए डट जायें। बंगाल सरकार को भूल जाइये। भारत सरकार को भूल जाइये। विश्वविद्यालय की सिनेट के सदस्य के नाते, अपने विश्वविद्यालय की सच्ची संतान के नाते आप अपना कर्त्तव्य निभाएं। सर्वप्रथम स्वतंत्रता, उसके बाद भी स्वतंत्रता, सदैव स्वतंत्रता, इसके अतिरिक्त किसी भी अन्य बात से मुझे संतोष नही मिलेगा।"

सरकार झुक गई और बिना किसी शर्त के 2,50,000 रुपयो का अनुदान दे दिया। कुलपति से केवल अनुरोध किया गया कि वे बंगाल के महालेखागार के साथ परामर्श कर विश्वविद्यालय के बही-खातों को पुन: संगठित करें।

1923 में विश्वविद्यालय का संकट और गहरा हो गया। गंभीर किस्म की वित्तीय कठिनाइयों के अतिरिक्त विश्वविद्यालय को प्रतिक्रियावादी वैधानिक प्रस्तावों से भी संकट की स्थिति का सामना करना पड़ा। उसी वर्ष कुछ समय पहले विश्वविद्यालय के कुलाधिपति लार्ड लिटन ने कुलपति होने के नाते आशुतोष को गुप्त रूप से विश्वविद्यालय के सुधार और माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की स्थापना से संबंधित दो बिलों की प्रतिलिपियां भेजीं। सिनेट ने 23 जनवरी, 1923 की अपनी बैठक में बिलों पर विचार करने और रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए आशुतोष की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। इसके बाद विश्वविद्यालय से संबंधित दो और बिल आये और सिनेट ने उन्हें भी जांच में शामिल कर लिया। इन्हें बंगाल विधान परिषद के गैर-सरकारी सदस्यों सुरेन्द्रनाथ मल्लिक और जतीन्द्रनाथ बसु ने तैयार किया था। सरकारी बिलों के बारे में सिनेट ने कुलाधिपति को सूचित किया कि उसकी राय में पहले बिलों की जानकारी जनता को दी जानी चाहिए। जहां तक गैर-सरकारी बिलों का प्रश्न था, सिनेट ने घोषणा की कि उनका उद्देश्य "विश्वविद्यालय के मामलों में शिक्षामंत्री की प्रधानता प्राप्त करना" था। सिनेट के विचार में यह चारों बिल सैडलर आयोग की सिफारिशों से बुनियादी तौर पर अलग थे। इसके अलावा उन पर इस आधार पर भी आपत्ति की जा सकती थी कि उनमें विश्वविद्यालय को वित्तीय सहायता देने का कोई प्रावधान नही था।

आशुतोष के लिए यह जबर्दस्त शारीरिक और मानसिक थकावट का समय था। विश्वविद्यालय मे बहुत सी बैठकों के साथ-साथ उन्होंने कुलाधिपति लार्ड लिटन को मामलों से संबधित तथ्य देने और सही जानकारी देने के लिए जबर्दस्त पत्र-व्यवहार किया। इन सभी बातो के दौरान, उनकी प्रिय पुत्री कमला की मृत्यु हो जाने से उनका दिल फट गया।

आशुतोष का कार्यकाल 3 अप्रैल, 1923 को समाप्त होना था। 24 मार्च, 1923 को उन्होने विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह को अंतिम बार संबोधित किया। उन्होंने बताया कि उनके शत्रु इस बात पर व्याकुल रहे हैं कि अज्ञात और संकटपूर्ण परिस्थितियों के मध्य भी विश्वविद्यालय का कार्य निरंतर स्थिर गति से चलाया गया है।—"अत्यंत गंभीर किस्म के वित्तीय कठिनाइयों के बीच में भी प्रत्येक विभाग मे हमारे विश्वविद्यालय के अध्यापकों ने सफलतापूर्वक इस कार्य को जारी रखा। मैं बड़ी प्रसन्नता से इस बात पर आभार व्यक्त करता हूं कि विश्वविद्यालय के पूर्णकालिक अध्यापको ने, जिनके पास बाहरी आमदनी का कोई साधन नहीं है, स्वेच्छा से अपने वेतन के एक बड़े भाग की प्राप्ति को स्थगित कर दिया जबकि इस बात के कई उदाहरण हैं कि ऐसे लेक्चररों ने, जो कालिजों से संबंधित है अथवा जो आय के अन्य साधनों पर निर्भर कर सकते हैं, खुशी-खुशी बिना किसी वेतन के हमारे काम में शामिल होना जारी रखा। इन सबसे बड़ी बात यह है कि प्रो० सर प्रफुल्ल चन्द्र राय ने पांच वर्षों के लिए अपने समस्त वेतन को समर्पित करने की पेशकश की है—।" आशुतोष ने विश्वविद्यालय के अध्यापको के शोध-कार्य की अच्छी प्रगति पर संतोष व्यक्त किया। उनमें से पाँच ने डाक्टर ऑफ साइंस की ओर चार ने डाक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि प्राप्त की थी। विश्वविद्यालय के अध्यापकों और शोध-कर्ताओं ने विश्व की सभी विद्वत् पत्रिकाओ के लिए एक के बाद कई शोध-पत्र लिखे थे। विश्वविद्यालय की स्वायतत्ता की परम आवश्यकता के विषय मे उन्होंने ब्रिटेन के विश्वविद्यालय से संबंधित रायल कमिशन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलाधिपति के रूप मे सर हारकोर्ट बटलर और रंगून विश्वविद्यालय के कुलाधिपति के रूप में सर रेजिनाल्ड क्रैडोक द्वारा व्यक्त किये गये विचारो का उल्लेख किया। उन्होने ग्लैसगो विश्वविद्यालय के कुलाधिपति के रूप में रोजबेरी के अर्ल द्वारा दिये गये स्मरणीय भाषण को उद्धृत किया। "हम सरकार से न तो अधिक लेते है और न ही अधिक मांगते है। परंतु सरकार हमें प्रतिदिन अपने पर निर्भर होने को आमंत्रित करती है। मुझे लगता है कि मैं मोहक और लुभावनी कानाफूसी सुन रहा हूं—"तुम मजबूत होगे, हम तुम्हें अपंग होने का निमंत्रण देते है। क्या तुम देख सकते हो? अंधे हो जाओ। क्या तुम सुन सकते हो? बहरे हो जाओ। क्या तुम चल सकते हो? इतने साहसिक न बनो। यह रही एक बांह के लिए बैसाखी। जब तुम्हें इसकी आदत पड़ जायेगी, तुम दूसरा मांगने लगोगे—जितनी जल्द हो उतना ही अच्छा

है—हमारी पढाई की सीख थी—संतुलित हो जाओ। आधुनिक सभ्यता है—असंतुलित हो जाओ, सरकार को हर मामले में दखल करने दो, जांच-पड़ताल करते हुए, घुसते हुए, बाधा डालते हुए। "आशुतोष ने कहा कि", यदि इस तरह की राय स्वतंत्रता के अपने निवास स्थान मे जानबूझ कर एक ऐसे व्यक्ति द्वारा कायम रखी जा सकती है जिसने ब्रिटिश साम्राज्य में साध्य सबमे उच्च स्थान प्राप्त किया था तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि हम इस देश में सरकारी खजाने से उपहार लाने वालो से भयभीत हो रहे है। सार्वजनिक निधि के अभिभावक—स्वीकार न की जा सकने वाली शर्तो को जोड़ने की कोशिश कर सकते हैं, जैसा कि वास्तव मे उन्होंने हमारे साथ किया—इस तरह की शर्तें जब भी, जिस किसी भी रूप या आकार में लगाई जायें, ऐसे किसी भी विश्वविद्यालय द्वारा उनका सशक्त विरोध किया जाना चाहिए जो पूर्ण रूप से स्वायत्तता प्राप्त करने को उत्सुक है और जो प्राप्त हो जाने के बाद उसकी बहुमूल्य सम्पति होगी—हम बेहिचक इस सिद्धात को मानते है कि यदि राष्ट्र होने के नाते हम शिक्षा को अपनी नीति बनायें, और इसमें राजनीति को शामिल नहीं किया जा सकता, तो स्वतंत्रता ही इसकी प्राण-शक्ति, इसकी प्रगति की शर्त और इसकी सफलता का रहस्य है।" जिन शब्दो में उन्होने अपने अतिम दीक्षांत भाषण की समाप्ति से पहले स्नातको को सम्बोधित किया वे कई आने वाली पीढियों को झकझोरते रहेगे। उन्होने कहा, "—आपका भाग्य चाहे किसी भी क्षेत्र से जुड़ा हो, आपकी चाहे जो भी आशाए और आशंकाएं हों, अपने विश्वविद्यालय में पुत्र-सुलभ श्रद्धा और आसक्ति से ही वापस आये। परिषदें आयेंगी और जायेंगी, मंत्रालय पनपेंगे और नष्ट होंगे, दल उभरेंगे और या तो अस्त हो जायेंगे या अपना स्वरूप बदल कर जीवित रहेंगे। परंतु आपका विश्वविद्यालय, मेरा विश्वविद्यालय सदैव रहेगा, यदि हजारों की संख्या में उसकी संतान, उसके विजय ओर विपत्ति दोनो ही में, अटल निष्ठा और श्रद्धा के साथ उसका समर्थन करे। उसके उज्ज्वल भविष्य के बारे मे मेरा विश्वास अटल है क्योंकि मेरे विचार मे उसे एक ऐसा राष्ट्रीय संगठन होना चाहिए जो आत्म-निर्भर हो पर देश सेवा में जुटा हो और जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी समाज की विविध और बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुसार अपने को ढालता रहे।"

दीक्षांत समारोह के बाद घर लौटने पर लार्ड लिटन का एक पत्र उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। लार्ड लिटन आशुतोष से यह आश्वासन चाहते थे कि वो अपना सरकारी विरोधी रवैया छोड़ देंगे और उसे अपना हार्दिक सहयोग देंगे। यदि उन्होंने ऐसा किया तो वे इस बात की व्यवस्था करेंगे कि कुलपति के तौर पर उनकी एक और मिआद के लिए पुनर्नियुक्ति हो। लार्ड लिटन ने कहा, "मैं इस पद पर आपकी सेवाएं पुनः प्राप्त करने के लिए और उत्सुक हूं क्योंकि मेरा विचार है कि विश्वविद्यालय के लिए और बंगाल में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आपकी क्षमता और

उपलब्धियां बहुमूल्य हैं। परंतु इस विश्वास पर कि आप विश्वविद्यालय के हित में काम कर रहे है,यदि आप अपनी क्षमताओ और उपलब्धियो का सरकार के खिलाफ इस्तेमाल करें तो आपका इस पद पर निरंतर आसन्न रहना असंभव होगा।" इसके बाद उन्होंने आशुतोष पर सरकार के उद्देश्यों और अभिप्रायो के मिथ्या निरूपण का और सरकार को बदनाम करने के लिए अखबारों मे उसके विरुद्ध लेख छपवाने का आरोप लगाया। "आपने सर माइकल सैडलर, भारत सरकार और असम सरकार से हमारे बिल का विरोध करने की अपील की है। यह सब किसी ऐसे सहयोगी का काम नहीं रहा है जो सरकार और विश्वविद्यालय के बीच सहयोग की स्थिति में सुधार करने को उत्सुक हो बल्कि उस व्यक्ति का रहा है,जोकि इन दोनो के बीच किसी भी प्रकार के संबंधों का विरोधी हो।—मैं इस अवसर पर, जबकि कुलपति के पद पर एक नई नियुक्ति की जानी हैं—आपको आमंत्रित करता हूं कि आप यह आश्वासन दें कि आप विरोध के बदले हार्दिक सहायता का रुख अपनायेंगे।"

पत्र के विषय में न्यूनतम यह कहा जा सकता है कि यह गलत कल्पनाओं पर आधारित था। इससे स्पष्ट होता है कि लिटन को आशुतोष के चरित्र की बहुत ही कम समझ थी। अन्यथा, हमें यह बात समझ नहीं आती कि उन्हें धमका कर अपने अधीन करने का विचार भी उन्हें कैसे आया। दो दिन के अदर ही आशुतोष ने लिटन को उपयुक्त उत्तर लिख भेजा। सर माइकेल सैडलर, भारत सरकार और असम सरकार से उनके द्वारा सरकारी बिलों का विरोध करने की अपील करने के आरोप के बारे में आशुतोष ने कहा, "मैंने फैसला किया था कि मैं सिनेट के प्रत्येक सदस्य को बिल के प्रावधानों पर बहस करने का मौका दूंगा। जैसा कि आप जानते ही होंगे सिनेट में महामहिम असम के गवर्नर, गवर्नर-जनरल की परिषद् का शिक्षा से संबंधित सदस्य, असम का शिक्षा मंत्री और असम का सार्वजनिक शिक्षा निदेशक भी शामिल हैं। इनमें से प्रत्येक महानुभाव को सभी कागजात गुप्त दस्तावेजों के तौर पर भेजे गए। यदि मैं उनको कागजात देने से इंकार करता तो उन्हें मेरी न्याय-संगत शिकायत करने का अधिकार मिलता। यदि परिणाम यह रहा है कि उन्होने आपकी सरकार द्वारा सोचे गए उपायों के बारे में प्रतिकूल राय बनाई है और ऐसे कदम उठाये हैं जो उनकी दृष्टि से आवश्यक और उचित है तो हो सकता है कि आपको बुरा लगे। परंतु निश्चय ही यह मेरे खिलाफ शिकायत का आधार नही बन सकता।" उन्होने सर माइकल सैडलर को यह सूचना दी थी कि उनकी और सिनेट की सलाह के बावजूद सरकार ने उनकी अध्यक्षता वाले आयोग की सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया था, जो कि एक ऐसा तथ्य है जो आमतौर पर जनता को मालूम है। यह विश्वविद्यालय और देश के अधिकतम हित में था। इस आरोप का कि उन्होंने सरकार को बदनाम करने के लिए प्रेस में लेख प्रकाशित करवाये है, उन्होने कड़ा विरोध किया, "यह मानहानि है और मैं आपको चुनौती देता हूं कि आप इस

निराधार आरोप के समर्थन में प्रमाण प्रस्तुत करें।" उन्होने यह आरोप स्वीकार किया कि उनके द्वारा की गई आलोचना रचनात्मक होने के बजाय नकारात्मक रही है। "जी हां, आलोचनाएं बिल के प्रावधानों के प्रति नकारात्मक ही रही हैं। प्रावधान मुझे और सिनेट में मेरे सहयोगियो को अत्यंत आपत्तिजनक लगते है और जैसाकि हमने बिना हिचक लिखित रूप मे दर्ज कराया है, शैक्षिक आधार के बजाय राजनीतिक आधार पर बनाये गये प्रतीत होते है।" उन्होने इस आरोप का खंडन किया कि उन्होने कुलाधिपति की कोई सहायता नहीं की। "में यह दृढ़तापूर्वक कहता हूं मैंने निरंतर आपको अपनी सहायता और सलाह दी जिन्हे, आपने उन कारणो से स्वीकार नहीं किया जिनकी केवल आप ही को जानकारी है। गहरे दुःखों के दौरान भी मैंने बिलों के प्रावधानो की विस्तार से समीक्षा करते हुए आपको बहुत से पत्र लिखे। आपने इस तरह व्यक्त की गई आलोचना का उत्तर देने की कभी कोशिश भी नही की।—इसके अलावा, दोनों बिलों से संबंधित समिति ने उनकी धाराओ की सूक्ष्म तौर पर आलोचना की थी।—आपने हमारी राय के बारे में अपना मत कभी भी दर्ज नही करवाया। आपने मुझे रिपोर्ट के बारे मे आपसे विचार-विमर्श करने का मौका भी नही दिया है।" इसके बाद उन्होंने 'अच्छे व्यवहार पर' एक और मिआद के लिए उन्हें कुलपति नियुक्त करने के लिटन के अपमानजनक प्रस्ताव को अस्वीकार किया। उन्होंने आगे लिखा, "आपके पत्र मे जो विचार व्यक्त किये गये हैं; उनसे यह अर्थ निकलता है कि मैं इस पद के लिए प्रार्थी हूं और पुर्ननियुक्ति की उम्मीद में हूं। मैं आपको आश्वस्त करना चाहूंगा कि यदि आप और आपके मंत्री ऐसा समझते हैं तो यह बिलकुल गलत है। अपने मुझसे यह प्रतिज्ञा करने को कहा कि मैं विरोध के बदले हार्दिक सहयोग का रुख अपनाने लगूंगा। स्पष्ट है कि आप उस उच्च पद की परपराओ से परिचित नही है जिसे मैंने दस वर्ष संभाला है।—बहुत से पदाधिकारी ऐसे रहे है जिन्होने अपने प्रभु के नाम पर न्यायपूर्ण प्रशासन की शपथ ली। इन लोगों को यह बताये जाने पर आश्चर्य होता कि कुलपति होने के नाते उनसे सरकार के विचारों के अनुसार अपने को ढालने की अपेक्षा की जाती है, केवल इस कारण कि सरकार ने ही उन्हे नियुक्ति का उपहार दिया था। मेरा दावा है कि मैंने ईमानदारी के साथ अपने पद की सम्मानजनक परम्पराओं का पालन किया है और पिछले दो वर्षो में यह बात कभी भी मेरे मन मे नही आई कि मुझ से केवल आपकी सरकार की इच्छा के अनुकूल काम करने की अपेक्षा की जाती है।" अंत मे उन्होंने लिखा, "मैं निस्संकोच आपको वह एकमात्र उत्तर भेजता हूं जोकि एक ईमानदार व्यक्ति भेज सकता है, एक ऐसा उत्तर जो आप और आपके सलाहकार चाहते है। आपके द्वारा मेरे लिये किये गये अपमानजनक पेशकश को मै अस्वीकार करता हूं।"

सरकार ने आशुतोष के स्थान पर कुलपति पद पर कार्य करने के लिए भूपेन्द्र-

बसु को नियुक्त किया। सिनेट की अपनी अध्यक्षता में पहली बैठक को सम्बोधित करते हुए नये कुलपति ने आशुतोष की खूब प्रशंसा की। उन्होंने कहा, "महोदय, आपने हमारे लिए एक मंदिर का निर्माण किया है जिसके बनाने में चाहे कोई भी गलती हो, लेकिन जो अभिकल्पना और अवधारणा के रूप में भव्य है और जो देश भर की और आने वाली पीढ़ियों की श्रद्धा और प्रशंसा का पात्र रहेगा। आपने इसके लिए परिश्रम, क्षमता, प्रतिभा और इनसे भी अधिक, देश के युवाओं के प्रति ऐसे प्रेम का समर्पण किया है जिसके आगे कोई भी नहीं जा सकता और शायद ही कोई इसकी बराबरी कर सकेगा। मुझे उस कार्य में जो मैंने संभाला है आपके पदचिह्नों का अनुसरण करना है।"

7

वे अंतिम दिन

आशुतोष अब यद्यपि कुलपति नही रहे थे लेकिन फिर भी, सिनेट और सिंडीकेट के सदस्य के रूप में और कला तथा विज्ञान की स्नातकोत्तर परिषद के अध्यक्ष होने के नाते विश्वविद्यालय के मामलों में वे पहले जैसा ही प्रभाव डालते रहे। उनके मस्तिष्क और शरीर पर विश्वविद्यालय के कार्य का पिछले कुछ महीनों से जो दबाव पड़ रहा था उससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा, खासतौर से इसलिए कि ज़बर्दस्त व्यक्तिगत दुःखों के दौर में भी उन्हें यह कार्य जारी रखना पड़ा था। जनवरी 1923 में उनकी सबसे बड़ी बेटी कमला का निधन हो गया। उन्हें इस बदकिस्मत लड़की से बहुत गहरा स्नेह था और उसकी मृत्यु ने उनका स्वास्थ्य हमेशा के लिए बिगाड़ दिया। उन्होने कहा, "वह घर के लिए और उन सबके लिए ज्योति थी जो उसके प्रभाव के दायरे में आये।" उसकी स्मृति में आशुतोष ने 'कमला लेक्चरशिप' नाम के लेक्चरर पद की स्थापना के लिए विश्वविद्यालय को 40,000 रुपये का उपहार दिया। प्रवक्ता को बंगला या अंग्रेजी में भारतीय जीवन और चिंतन पर अधिक से अधिक तीन व्याख्यान देने होते थे। पहली कमला प्रवक्ता थी ऐनी बेसेंट। उसके बाद कमला लेक्चरशिप के लिए जो अन्य महान हस्तियां नियुक्त की गई उनमें श्रीनिवास शास्त्री, सरोजिनी नायडू, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अबुल कलाम आज़ाद और सर्वपल्ली राधाकृष्णन शामिल हैं।

उस ज़माने में इस विषय पर बहुत-सी अटकलबाज़ियां लगाई जा रही थीं कि विश्वविद्यालय को बचाने के लिए आशुतोष आगे क्या करेंगे। उनके लिए सीधा-सादा मार्ग यह था कि वे न्यस्यपीठ से त्यागपत्र दें और सी. आर. दास के सहयोग में आगामी चुनाव लड़कर सरकार पर अधिकार कर लें। इस तरह की अफवाहों से सरकार भयभीत हो गई और सरकारी अधिकारियो ने गुप्त रूप से इस बात पर

विचार करना भी शुरू कर दिया कि क्या वे आशुतोष के खिलाफ सरकारी कर्मचारियों की आचार-संहिता को लागू कर सकते है। परंतु वे आगे की कार्यवाही नही कर पाये क्योकि उनके पास जो कुछ भी प्रमाण था उसको केवल अफवाह ही कहा जा सकता था।

4 अगस्त, 1923 को आशुतोष ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कानून अध्ययन विभाग के उद्घाटन समारोह को सम्बोधित किया।

आशुतोष ने 2 जनवरी, 1924 को नियत तिथि से 6 मास पूर्व ही स्वास्थ्य संबंधी कारणों से न्यायपीठ से अवकाश ग्रहण किया। उन्होने जज के रूप में बीस वर्षों तक उच्च न्यायालय की सेवा की और 1920 में कुछ समय के लिए मुख्य न्यायाधीश भी रह चुके थे। विदाई के अवसर पर उनकी बहुत प्रशसा की गई।

7 जनवरी, 1924 को आशुतोष ने लखनऊ विश्वविद्यालय के दीक्षात समारोह को सम्बोधित किया। उनका विषय था—'विश्वविद्यालय और राष्ट्र'। लखनऊ विश्वविद्यालय संघ के अधिकारियो ने विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह के सिलसिले में सर आशुतोष की उपस्थिति का फायदा उठाते हुए केनिग कालेज भवन के बेनेट हाल में एक वाद-विवाद का आयोजन किया और सर आशुतोष को उसमें शामिल होने के लिए आमंत्रित किया। विषय था—"इस सदन के विचार मे मत्रियों और परिषदो द्वारा विश्वविद्यालय के प्रशासन पर नियंत्रण रखना न्यायोचित है।"

इस अवसर पर आशुतोष ने कहा, "सरकार को अपने विभिन्न कार्यों को उचित रूप से गठित निकायो के जरिए पूरा करना चाहिए। उच्च शिक्षा के बारे मे सरकार द्वारा अपने कर्त्तव्य का पालन विश्वविद्यालयों के माध्यम से किया जाना चाहिए जो कि इसी विशेष उद्देश्य के लिए स्थापित सही अंग है। जब एक बार आपने विश्वविद्यालय के लिए संविधान बना दिया है तो उसे स्वतंत्र रहने दीजिए। यदि आप यह पायें कि संविधान असफल रहा है तो विधानमंडल को हस्तक्षेप कर संविधान को बदलने दीजिए। परंतु इस बात मे शाब्दिक विरोध है कि आपके सामने ऐसा विश्वविद्यालय है जिसे सरकार द्वारा उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने का अत्यंत महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य सौंपा गया है और इसके बावजूद आप हर संभव या असंभव मौके पर उसमें हस्तक्षेप करने की सोचते हैं। ऐसी स्थिति असहनीय है और यहां तथा अन्यत्र व्याप्त शैक्षिक और राजनीतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए मैं विश्वास के साथ आपसे आग्रह करता हूं कि आप प्रस्ताव को अस्वीकार कर दें और ऐसे स्वायत्त स्वशासित विश्वविद्यालयो के लिए जोरदार माग करें जो राष्ट्र के जीवन से गहराई से जुड़े हों पर इसके बावजूद बाहरी नियंत्रण से मुक्त हो—सरकार की राजनीतिक बेड़ियों से मुक्त, धर्म संबंधी बेड़ियों से मुक्त, धार्मिक निगमो से मुक्त और समाज के नागरिक बंधनों से मुक्त। केवल इसी तरह से विचारों के एक रचनात्मक और स्वतंत्र केन्द्र के शक्तिदायक प्रभाव से कोई भी

राष्ट्र भूतकाल के अनुभव के साथ-साथ भविष्य की आकांक्षाओं को समान रूप से साथ लेकर नैतिक और बौद्धिक मोक्ष प्राप्त कर सकता है।''

आशुतोष ने कलकत्ता उच्च न्यायालय मे दोबारा वकालत शुरू की और थोड़े समय बाद डुमरांव के राजा बनाम हरिप्रसाद के मुकद्दमे में, जो उस समय पटना उच्च न्यायालय के समक्ष था, निर्देशक पैरवी का काम स्वीकार किया। इस कार्य से पहले से अत्यधिक परिश्रम किये हुए शरीर के ऊपर और भी ज़बर्दस्त दबाव पड़ा। इसके बावजूद वे हर सप्ताहांत मे कलकत्ता में आते थे और शनिवार की देर रात तक और रविवार को विश्वविद्यालय के कार्य पूरे करते थे। इन सबके अलावा वे अपने सबसे छोटे बेटे की हालत पर अत्यधिक चिंतित थे जो उस समय कलकत्ता में गंभीर रूप से बीमार पड़ा हुआ था।

इस महापुरुष का अंत अचानक ही आ गया। वह एक बिलकुल ही आकस्मिक घटना थी। केवल तीन दिन की अल्पकालीन बीमारी के बाद 25 मई, 1934 की दोपहर को उनका देहावसान हो गया। 17 मई को उनकी गाडी के चालक ने उन्हे अपने घर रात्रि के भोजन का निमंत्रण दिया था। यह बात उनकी महानता को दिखाता है कि वो इतने दीन-हीन व्यक्ति का निमंत्रण भी ठुकरा नही सके थे।

23 तारीख की प्रातः वह बिलकुल भले-चंगे थे और सुबह की सैर पर भी गये। घर लौटने पर उन्हे कई दस्त हुए और बाद मे उन्होंने सारे शरीर में जलन की शिकायत की। उन्हें ज्वर हो गया और तापमान तेजी से बढने लगा। जलन की अनुभूति बढने लगी और जोरो का दर्द होने लगा। और भी बहुत-सी समस्याएं होने लगी। आशुतोष के सबसे बड़े बेटे श्री रामप्रसाद मुकर्जी ने व्यग्रता के साथ पटना से डाक्टरो के लिए कलकत्ता तार भेजे। कलकत्ता के एक जाने-माने चिकित्सक डा० पी. नंदी 24 मई की सुबह पटना पहुचे। 25 मई की सुबह से वे बेहोश थे और दोपहर को उनकी मृत्यु हो गई। आशुतोष के दूसरे बेटे श्री श्यामप्रसाद मुकर्जी शिमला में प्रसिद्ध चिकित्सक सर नीलरतन सरकार और डा० सी. वी. रमन के साथ एक सम्मेलन में भाग ले रहे थे। ये लोग उनकी मृत्यु के एक घंटे बाद पटना पहुचे। बीमारी का पता ही नही लग सका। यह वास्तव मे एक दु:खदायी अंत था। कलकत्ता के लोग समाचार सुन कर स्तब्ध रह गये। जब अगले दिन सुबह रेल द्वारा उनका पार्थिव शरीर हावड़ा स्टेशन लाया गया, तो हज़ारो की संख्या में कलकत्ता के बड़े-छोटे सभी नागरिक बगाल की इस महान संतान को श्रद्धांजलि अर्पित करने एकत्रित हुए। दु.खद दृश्यो के बीच आशुतोष के पार्थिव शरीर का आदि गंगा के तट पर केवड़ाताला घाट पर दाह-संस्कार कर दिया गया।

बीस वर्षो के लिए सर आशुतोष ही विश्वविद्यालय थे और विश्वविद्यालय का अर्थ सर आशुतोष था। अचानक अब जो शून्य बन गया उससे विश्वविद्यालय मे गहरी उदासी छा गई। 31 मई, 1924 को सिडीकेट की विशेष बैठक हुई जिसमे

निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया।

"हम सिनेट के सदस्य, इस विशेष रूप से बुलाई गई बैठक में अपने आदरणीय सहकर्मी सर आशुतोष मुकर्जी की मृत्यु पर गहरा दु:ख व्यक्त करते हैं। 1889 से कुलपति या सिंडीकेट के सामान्य सदस्य के रूप मे सिनेट के कार्यों से उनका घनिष्ठ संबंध रहा था। 35 वर्षों तक उन्होने अपनी उत्कृष्ट बौद्धिक शक्तियां और अद्वितीय कर्मशक्ति अपने सहयोगियों की सेवा में लगाई और इस तरह उन लोगों को एक ऐसा कार्य पूरा करने मे सहायता दी जो प्रति वर्ष पहले से अधिक कठिन, श्रमसाध्य और कठोर होता गया। पिछली दो शताब्दियो में विश्वविद्यालय के कार्य में विशिष्ट वृद्धि जिसे सिनेट के प्रतिनिधि होने के नाते हमें निर्देशित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, न केवल उनकी रचनात्मक प्रतिभ का परिणाम थी बल्कि उस निष्ठावान परिश्रम का फल थी, जो उन्होंने हमारे निकाय के सदस्य के रूप में प्रदर्शित की थी। हमारे विशिष्ट सहकर्मी के निधन पर जो वैयक्तिक और निजी दु.ख की हम अनुभूति करते हैं वह उनके काम करने की अथक क्षमता, उनकी निर्देशन कुशलता और उनके अनोखे ज्ञान और अनुभव की अनुपस्थिति मे हमारे कार्य को होने वाली जबर्दस्त क्षति के बारे में सोचने से और भी गहरी हो जाती है। ऐसे मित्र, सहयोगी और नेता के सम्मान में दु:खद श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए और हमारे निकाय के सदस्य के रूप में शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उनकी सेवाओं की गहरी प्रशंसा करते हुए हम यह आशा व्यक्त करते हैं कि उनके ईमानदार परिश्रम की स्मृति हम में से जो भी जीवित रहेंगे उन्हें प्रेरणा देगी और जो हमारे बाद आयेंगे उन्हें उनके महान उदाहरण का अनुसरण करने, अपनी सभी शक्तियों को विश्वविद्यालय की सेवा मे समर्पित करने और अपनी मातृभूमि के लोगो में ज्ञान के विकास के उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रेरित करेगी जिसके लिए वे जीवित रहे।"

इस दु:खदायी घटना से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होकर कुलाधिपति होने के नाते लार्ड लिटन दार्जिलिंग से सिनेट की शोक सभा की अध्यक्षता करने आये। उन्होंने कहा, "झुके हुए सिर और भारी हृदय से हम अपने विश्वविद्यालय की सबसे महान संतान के निधन पर शोक मनाने आये है।" उन्होंने आगे कहा, "सर आशुतोष मुकर्जी अपने समय के सबसे असाधारण और प्रातिनिधिक बंगाली थे। उनकी बहुमुखी प्रतिभा और उनकी रुचि की विविधिता इतनी विशाल थी कि प्रांत के सार्वजनिक जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र होगा जिसे उनकी मृत्यु से क्षति न हुई हो। परंतु इस स्थान पर और उन लोगो की उपस्थिति मे जो उनके सहयोगी और सहकर्मी थे मै आपको उस तेजस्वी वकील की नही, न ही उस विद्वान जज की, और न उस बहुमुखी विद्वान की याद दिलाऊंगा जिसने विश्वविद्यालय के हित में और ज्ञान के विकास के उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए, जिसके लिए वह संघर्ष करता रहा है, शिक्षा के क्षेत्र में 35 वर्ष का समय लगा दिया, वह समय जो उनसे

कम बुद्धिमान अथवा कमज़ोर व्यक्ति मनोरंजन या आराम के लिए बचाये रखता। कलकत्ता विश्वविद्यालय के वर्तमान स्वरूप में उन 35 वर्षों के तगड़े परिश्रम की छाप मिलती है। उच्च शिक्षा के निवास के रूप में और एक शैक्षिक संस्था के तौर पर कलकत्ता विश्वविद्यालय का विकास उनके जीवन की मुख्य उपलब्धि थी।— विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर विभाग उनके जीवन का अद्वितीय फल है।"

आशुतोष के साथ अपने मतभेदों की चर्चा करते हुए लिटन ने कहा, "पिछले वर्ष उन्हें और मुझे एक-दूसरे का विरोधी बताया जाता था परंतु हमारे बीच ऐसा कोई बुनियादी सैद्धांतिक मतभेद नही था कि आपसी विरोध होता—यदि उन विषयों पर जो अस्थायी तौर पर हमें अलग करते लगते थे वास्तव में जितना मैं मानने को तैयार हूं उससे ज़्यादा विरोध था तो भी मृत्यु के समक्ष वह सारा विवाद ठंडा पड़ जाता है। आज हम केवल उस महान् बौद्धिक शक्ति को याद कर सकते है जो उन्होंने लम्बी अवधि के लिए अपने विश्वविद्यालय की सेवा में लगाई, वर्षों के उस अविरल परिश्रम की याद कर सकते है जो उन्होने उसकी उच्चतर शाखाओं के संगठन और प्रशासन पर समर्पित किया और उस प्रसिद्धि की याद कर सकते हैं जो उन्होने कलकत्ता के लिए भारत में ही नहीं बल्कि विश्व भर मे हासिल की—जो अपने देशवासियों की दृष्टि मे और विश्व की दृष्टि मे विश्वविद्यालय का इस सीमा तक प्रतिनिधित्व करते रहे कि बहुत वर्षों तक सर आशुतोष स्वयं विश्वविद्यालय थे और विश्वविद्यालय सर आशुतोष था।" लिटन ने आगे कहा, "आइये, हम उन परिवर्तनो के लिए कार्य करने के सामान्य संकल्प में एक हो जाये जोकि विश्व के सामने हमारे विश्वविद्यालय का ऊंचा दर्जा बनाये रखने के लिए अनिवार्य है। आइये मेल-मिलाप के इस मंदिर की आधार शिला को उनके मरणासन्न हाथों से कलकत्ता विश्वविद्यालय को एक पवित्र न्यास के रूप में प्राप्त करने का संयुक्त और सामान्य उद्देश्य बनाएं और आने वाले वर्षो मे विश्वविद्यालय के सामान्य संगठन के लिए चाहे किसी भी प्रकार के परिवर्तन अनिवार्य पाये जायें, इसकी स्थिरता, इसकी समृद्धि, इसकी स्वतंत्रता और इसके भावी विकास में किसी भी प्रकार का खतरा न आने दे।"

आशुतोष का जीवन के एक मोड़ पर निधन हो गया। अब जबकि उन्होंने सरकारी सेवा से अवकाश ग्रहण कर लिया था, राजनीतिक जीवन में भाग लेने को वे स्वतंत्र थे। इसमें कोई संदेह नही है कि जीवन के इस नये दौर मे भी वे शिक्षा क्षेत्र की सेवा करते रहते। एक उदासीन सरकार ने विश्वविद्यालय को कंगाल बनाये रखा और अपने जीवन के लक्ष्य की पूर्ति में उन्हें बाधा पहुंचाई। अतः यह सोचना ठीक ही होगा कि शायद वे विधानमडल के लिए चुनाव लड़ते और शिक्षा

विभाग का कार्यभार प्राप्त करते ताकि शिक्षा के लक्ष्यो की ओर वित्त के प्रवाह की व्यवस्था की जा सकती और वे प्रांत मे शिक्षा के सभी चरणों के विकास के लिए बिना किसी रोकटोक के कार्य करते रहते। परंतु दुर्भाग्यवश नियति ने उन्हे ऐसा करने का समय ही नही दिया और हम केवल सोचते भर रह गये कि क्या-कुछ हो सकता था।

8

आशुतोष और बंगाल की विद्वत् समितियां

भारत को शोध के क्षेत्र में सर्वप्रथम स्थान पर पहुंचाने की महान इच्छा ने आशुतोष को अपने प्रात की सभी विद्वत् समितियों से सबद्ध होने के लिए प्रेरित किया।

वे बगाल की ऐशियाटिक सोसाइटी, इंडियन ऐसोसिएशन फार द कल्टिवेशन आफ साइंस, भारतीय संग्रहालय, बंगीय साहित्य परिषद्, बंगाल संस्कृत ऐसोसिएशन, इम्पीरियल लाइब्रेरी जिसे अब राष्ट्रीय पुस्तकालय कहा जाता है, और महाबोधि सोसाइटी से संबंधित थे। इन संस्थाओ की शोध की पतिष्ठित परम्पराएं थी और इनमे ऐसी बहुमूल्य शोध-सामग्री थी जिसका आशुतोष ने शोध और आम लोगो मे ज्ञान को प्रोत्साहित करने के लिए उपयोग करने का प्रयत्न किया।

आशुतोष 1886 में ऐशियाटिक सोसाइटी के सदस्य बने। उस समय तक गणित मे उनके मौलिक शोध-पत्र यूरोप की पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके थे और गणित में उनकी प्रतिभा को पश्चिम में मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। 1888 और 1890 के बीच उन्होने बंगाल की जर्नल आफ ऐशियाटिक सोसाइटी में गणित मे अपने अनुसंधानों पर कम से कम एक दर्जन बहुमूल्य शोध-पत्र प्रकाशित किए। वे 1906 से 1915 के बीच सोसाइटी के उपाध्यक्ष रहे और 1921 और 1923 के बीच अध्यक्ष रहे और उस हैसियत से शोध में संलग्न युवा विद्वानों को प्रोत्साहित करना और उन्हे शोध के नये क्षेत्रो की जानकारी देना अपना प्रमुख कर्त्तव्य बना लिया।

सोसाइटी मे अपने वार्षिक भाषण में उन्होंने अनेक अवसरों पर तिब्बती अध्ययन के महत्त्व पर जोर दिया। 1906 में अपने भाषण में उन्होने कहा, "—भारतीय पुरातनशास्त्र का कोई भी गभीर छात्र सबसे लाभप्रद जो पाठ्यक्रम अपना सकता है वह है तिब्बत संबंधी अध्ययन करना और हमारे सम्मुख उपलब्ध उन पाडुलिपियों का विश्लेषण करना जो कि आठ वर्ष पूर्व उस समय शुरू होते

हैं जब वे नेपाल के रेसिडेंट श्री होजसन द्वारा प्रस्तुत किये गये और पिछले वर्ष तिब्बती मिशन द्वारा लाये गये पाण्डुलिपियों के साथ समाप्त होते है। उसी भाषण में उन्होने सोसाइटी के सदस्यों से अपील की कि वे भारतीय इतिहास के मोहम्मद काल पर अधिक ध्यान दें। उन्होने विचार प्रकट किया कि "पूर्व देशीय विद्या में साहित्य और विज्ञान दोनों ही क्षेत्रों में हल करने के लिए इतनी अधिक और रोचक समस्याएं हैं कि मैं किसी ऐसे उचित कारण के बारे में सोच भी नहीं सकता जिससे हमारी सोसाइटी कभी भी दुर्बल हो सके। 1908 के अपने वार्षिक भाषण मे आशुतोष ने सोसाइटी के नवगठित चिकित्सा विभाग को अपनी शक्तियां भारतीय चिकित्सा पद्धति के इतिहास में अनुसंधान की ओर निर्देशित करने को प्रोत्साहित किया।

1910 के अपने वार्षिक भाषण मे उन्होंने भाटो द्वारा बखान किये गये राजपुताना के वृत्तांत के महत्त्व पर और उन्हें एकत्रित करने की संतोषजनक व्यवस्था कर राजपूत राज्यों का इतिहास लिखने की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होने कहा, "इसमें कोई विवाद नहीं है कि ऐसे बहुत से वृत्तातों को समय-समय पर लिखित रूप दिया जा चुका है, परंतु अब भी इनमें से अधिकतर विभिन्न राज्यो में बसने वाले पेशेवर और वंशगत भाटों की स्मृति में लिखी गयी गाथाओ गीतों के रूप में ही पाये जाते हैं। अतः केवल इस बात की ही आवश्यकता नही है कि वृत्तांतो की पाण्डुलिपियों को एकत्रित किया जाये बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप में चली आ रही गाथाओं को लिखित रूप दिया जाये। इसलिए यदि हमने राजपुताना के भाटों द्वारा बखान किये गये वृत्तांतो का पूरा संग्रह तैयार करना है तो यह आवश्यक है कि हमारे पास भाटों द्वारा सुनाई गई गाथाओ को लिपिबद्ध करने की एक सुव्यवस्थित संस्था हो और जाहिर है कि यह कार्य राजपूत सरदारों के सक्रिय सहयोग से ही सफलतापूर्वक पूरा किया जा सकता है।"

वर्ष 1913 के अपने भाषण में आशुतोष ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि, "तिब्बती अध्ययन के क्षेत्र मे हमारी प्रगति हमारे प्रतिष्ठित सदस्य सोमा द कोरोज के समय के बाद प्रशंसनीय नही रही है।" उन्होने एक बार फिर राजपुताना के भाटो के वृत्तांतों के बारे में शोध की आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित किया। आशुतोष ने 1915 के अपने वार्षिक भाषण का उपयोग भारतीय विद्वानों को तिब्बती अध्ययन के क्षेत्र में अन्य देशों के विद्वानों से पीछे न रह जाने के लिए प्रेरित करने, राजपुताना के भाटों के वृत्तांतों के महत्त्व पर जोर देने और इस्लामी न्याय-शास्त्र के सिद्धांतों के बारे में अनुसंधान में महत्त्व पर प्रकाश डालने के लिए किया, जो कि एक ऐसा विषय था जिसमें सोसाइटी के सदस्यो और बाहर के लोगों ने बहुत ही थोड़ा योगदान किया था।

1922 के अपने भाषण में उन्होंने वृहत्तर भारत के इतिहास में शोध के लिए

प्रचुर मात्रा में उपलब्ध सामग्री के बारे में बताया। उन्होने भारत का ऐसा विस्तृत इतिहास तैयार करने के महत्त्व पर भी बल दिया जो राजनीतिक घटनाओं का लेखा मात्र ही न हो बल्कि इसके साथ-साथ देश के धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन की महत्त्वपूर्ण गतिविधियों को भी सम्मिलित करे। उन्होने आशा व्यक्त की कि कुछ विद्वान भारत का इतिहास लिखने का भार उठायेंगे "जो सम्पूर्ण न होने के बावजूद आधुनिक वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार इतिहास ही है" और यह इच्छा व्यक्त की कि "इस प्रिय स्वप्न को साकार करने मे किसी भी भारतीय विश्वविद्यालय का या फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय का ही कोई अध्यापक सहायक हो।"

आशुतोष संस्कृत के अच्छे विद्वान थे और उन्होंने ऐशियाटिक सोसाइटी के इतिहास ग्रंथ में 'जिमूतवाहन व्यवहारा तारिका' का संपादन किया।

मई 1905 मे आशुतोष एशियाटिक सोसाइटी द्वारा मनोनीत सदस्य के रूप में राष्ट्रीय संग्रहालय की बोर्ड आफ ट्रस्टीज में शामिल हुए। अगस्त 1909 में वे संग्रहालय की बोर्ड आफ ट्रस्टीज के अध्यक्ष बन गये और अपनी मृत्यु तक उस पद पर आसीन रहे। आशुतोष ने संग्रहालय के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उन्होने 1910 के भारतीय संग्रहालय अधिनियम को कानून बनाने के काम को सहायता और समर्थन दिया। इस विधेयक के अंतर्गत राष्ट्रीय संग्रहालय के कार्य क्षेत्र में विस्तार किया जा सका और उसे वैज्ञानिक खोज और प्रदर्शित वस्तुओं को उधार देने के मामलो में काफी स्वयत्तता प्राप्त हुई। इस अधिनियम से संग्रहालय को जन-शिक्षा से संबंधित कार्य शुरू करने का अधिकार भी प्राप्त हुआ।

आशुतोष के निर्देशन में बंगाल सरकार की कला दीर्घा का भारतीय संग्रहालय के कला सामग्री न्यायालय (Art Ware Court) के साथ विलय कर भारतीय संग्रहालय का कला विभाग बनाया जिसे बोर्ड आफ ट्रस्टीज के प्रत्यक्ष नियंत्रण मे रखा गया। राष्ट्रीय संग्रहालय की इमारत का चौरंगी रोड के साथ-साथ विस्तार किया गया ताकि कला, चित्रकला और प्रागैतिहासिक पुरातत्व के लिए एक-एक, यानो कुल तीन नई दीर्घाओं के लिए स्थान की व्यवस्था की जा सके।

28 नवम्बर, 1913 को राष्ट्रीय संग्रहालय ने अपने संस्थापन के पहले सौ वर्ष पूरे किये। आशुतोष ने प्रथम शताब्दि से संबंधित समारोहो के उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता की। उन्होने एक प्रेरणादायक भाषण दिया जिसके दौरान उन्होंने बताया कि राष्ट्रीय संग्रहालय को क्या होना चाहिए। उन्होने कहा, "अब यह आमतौर से माना जाता है कि संग्रहालय उन वस्तुओ को संभाल कर रखने वाली संस्था है जो प्रकृति के चमत्कार और मनुष्य के कार्यों को अच्छी तरह दिखाती है ताकि इन्हें ज्ञान के भंडार का बढ़ाने और लोगों में संस्कृति और ज्ञान के उदय के लिए उपयोग किया जा सके। अतः किसी भी राष्ट्रीय या साम्राज्य संग्रहालय को तीन

कार्यों को पूरा करने के लिए सुसज्जित रहना चाहिए, पहला, ऐसे नमूनों को एकत्रित और संरक्षित करने के लिए जो कला और विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों मे ज्ञान का भौतिक आधार हैं, दूसरा, इस तरह एकत्रित किये नमूनों के बारे में व्याख्या और खोज करने तथा इस प्रक्रिया से प्राप्त ज्ञान के प्रसार के लिए, और तीसरा, जनता की रूचि को जागृत करने और उनके ज्ञान को बढ़ाने के उद्देश्य से उचित व्यवस्था करने के लिए।"

उनके अनुरोध पर और उन्हीं के मार्गदर्शन मे भारतीय सग्रहालय का विस्तृत इतिहास लिखा गया और 1914 में प्रकाशित किया गया।

संग्रहालय का मानव शास्त्र से सबधित संग्रह पहले भारतीय प्राणि सर्वेक्षण विभाग से अनुबद्ध था। आशुतोष ने इस पर बोर्ड आफ ट्रस्टीज़ का प्रत्यक्ष नियत्रण करवा दिया। इस प्रकार जाति विज्ञान से सबंधित दीर्घा बनी जिसने बाद में संग्रहालय के मानवशास्त्र विभाग का रूप धारण किया।

आशुतोष ने प्राकृतिक इतिहास विभाग और कला तथा पुरातत्व विभाग को भी पुनर्गठित और पुनर्व्यवस्थित किया। आशुतोष अपने पीछे एक ऐसा संग्रहालय छोड़ गये "जिसने अपने समृद्ध सग्रह और अपने उच्च-स्तर के वैज्ञानिक कार्य" के कारण उस समय भारत मे अपने किस्म के अकेले राष्ट्रीय सास्कृतिक और शिक्षण संस्थान का दर्जा प्राप्त किया।

विज्ञान के संवर्धन से संबंधित भारतीय ऐसोसिएशन से आशुतोष का सपर्क उस समय आरंभ हुआ जब उनकी आयु केवल 23 वर्ष थी। डा० महेन्द्र लाल सरकार के निमत्रण पर उन्होने अवैतनिक तौर पर ऐसोसिएशन मे गणित पर व्याख्यान देना शुरू किया और 1891 तक ऐसा करते रहे। उसके बाद अपने पद से संबंधित कार्यों के बोझ के कारण उनके लिए यह कार्य जारी रखना कठिन हो गया। 1910 में 2000 रुपये का चंदा देकर वे ऐसोसिएशन के आजीवन सदस्य बन गये और अगले वर्ष कार्यकारी समिति के सदस्य निर्वाचित हुए।

ऐसोसिएशन के 1903-1904 के सत्र की शुरूआत आशुतोष ने 'गणित का प्रायोगिक विज्ञान से सबध' विषय पर एक रोचक परिचायक व्याख्यान के साथ की।

1908 मे महाराजा जे. एम. ठाकुर की मृत्यु से रिक्त हुए स्थान पर वे ऐसोसिएशन के उपाध्यक्ष चुने गये। उन्होने कलकत्ता मे ऐसोसिएशन के तत्त्वावधान में आयोजित चार विज्ञान सम्मेलनों की अध्यक्षता की। 1923 में राजा प्यारे मोहन मुकर्जी की मृत्यु के बाद वे ऐसोसिएशन के अध्यक्ष बने और मरणकाल तक इस पद पर काम किया।

आशुतोष ने 1914 मे भारतीय विज्ञान काग्रेस के पहले अधिवेशन की अध्यक्षता की।

हम देख चुके है कि अपने कालिज के दिनो मे भी भारत और विदेश की जानी-

मानी पत्रिकाओं मे आशुतोष के गणित संबंधित महत्त्वपूर्ण शोध पत्र प्रकाशित हुए थे और इन शोध पत्रो की विख्यात गणितज्ञों ने प्रशंसा की थी। यदि आशुतोष अपने आपको पूरी तरह अपने प्रिय विषय गणित में समर्पित कर देते तो वे एक विश्वविख्यात गणितज्ञ बन जाते। 1908 में आशुतोष ने कलकत्ता मैथेमैटिकल सोसाइटी की संस्थापना की और मृत्यु तक अध्यक्ष के रूप में सोसाइटी का मार्ग-दर्शन किया। उनके जीवन काल मे सोसाइटी की 83 बैठकें हुईं और उन्होने प्रत्येक की अध्क्षता की। अनेक विदेशी गणितज्ञों को सोसाइटी का मानद् सदस्य बनाया गया। 1909 मे प्रो० गणेश प्रसाद ने, 1913 मे प्रो० फोरसाइथ ने और 1915 में प्रो० यंग ने अपने शोध के बारे में सोसाइटी में व्याख्यान दिये। इसके बाद प्रो० कल्टिस, एस एन. बोस, एन. आर. सेन, बी. एम. सेन जैसे विख्यात गणितज्ञों और अन्य लोगों के व्याख्यान हुए। आशुतोष के प्रोत्साहन और प्रेरणा से बहुत से प्रतिभाशाली युवा गणित से संबंधित शोध में जुट गये और सोसाइटी की पत्रिका मे लेख लिखे।[1]

आशुतोष ने लंबे समय तक साम्राज्य पुस्तकालय के, जो अब राष्ट्रीय पुस्त-कालय है, कार्यों का मार्गदर्शन किया। वे साम्राज्य पुस्तकालय की परिषद् के सदस्य थे। 1910 से लेकर अपनी मृत्यु तक वे परिषद के अध्यक्ष रहे।

आशुतोष को बंगला भाषा और साहित्य के प्रचार मे और इस विषय में शोध को प्रोत्साहन देने मे गहरी दिलचस्पी थी। उनके प्रयत्नो से भारत की अन्य देशी भाषाओं के साथ बंगला को भी कलकत्ता विश्वविद्यालय की उच्चतम परीक्षा के लिए अध्ययन के विषय के तौर पर शामिल कर लिया गया था। आशुतोष बहुत वर्षो तक बंगीय साहित्य परिषद् से सम्बद्ध रहे और 1904 से 1908 तक इस संस्था के उपाध्यक्ष रहे। 1915 मे आशुतोष ने अध्यक्ष के नाते उत्तर बंगाल साहित्य सम्मेलन को संबोधित किया। वे बंगला साहित्य सम्मेलन के 1916 के बाकीपोर अधिवेशन के अध्यक्ष थे। इन सभी सम्मेलनों में उन्होंने बगला साहित्य के अध्ययन के महत्त्व पर प्रकाश डाला और भावपूर्ण शब्दों मे बांगलाभाषा के शानदार भविष्य के विषय में बात की।

आशुतोष, जो कि स्वयं संस्कृत के विद्वान थे, देश मे संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहित करने के इच्छुक थे और संस्कृत विद्या के केन्द्र के रूप मे नवद्वीप की पुरानी प्रतिष्ठा को दोबारा जीवित करना चाहते थे। वे नवद्वीप पंडितों की सभा के अध्यक्ष थे जिसने उन्हें 'सरस्वती' की उपाधि से सम्मानित किया। ढाका के पंडितों ने उन्हें 'शास्त्रवाचस्पति' का खिताब दिया। वे 1908 से 1923 तक बंगाल संस्कृत सभा के अध्यक्ष थे। आशुतोष कलकत्ता के संस्कृत कालिज की प्रबंध समिति

1. एन. के. सिन्हा—आशुतोष मुकर्जी, पृ० 177-179।

के अध्यक्ष भी थे।

आशुतोष कलकत्ता विश्वविद्यालय में बौद्ध दर्शन और साहित्य के अध्ययन के महत्त्व को स्पष्ट रूप से जानते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने 1907 में विश्वविद्यालय में पाली की कक्षाएं प्रारंभ कीं। इस प्रकार कलकत्ता विश्वविद्यालय भारत में पाली का अध्यापन शुरू करने वाला पहला विश्वविद्यालय बना। पाली और बौद्ध साहित्य के अध्यापन के क्षेत्र में उनकी सेवाओं के सम्मान में सिलोन के भिक्षुओं ने उन्हें 'समबुद्धागम चक्रवर्ती' की उपाधि दी। 1916 में आशुतोष ने महाबोधि समाज का अध्यक्ष पद स्वीकार किया जिसे उन्होंने अपनी मृत्यु तक संभाला। 1920 में महाबोधि समाज के अध्यक्ष होने के नाते उन्होंने समाज की ओर से लार्ड रोनाल्डशे के हाथों एक मंजूषा प्राप्त की जिसमें भगवान बुद्ध के अवशेष थे। यह समारोह कलकत्ता के गवर्नमेंट हाउस में आयोजित किया गया था और आशुतोष ने धोती पहन कर और नंगे पांव अवशेष ग्रहण किये।

इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति नही होगी कि आशुतोष बंगला के समूचे संस्कृत क्षेत्र पर हावी एक विशालमूर्ति की तरह खड़े रहे।

9

आशुतोष—इंसान की हैसियत में

उनके बुलंद व्यक्तित्व, कठिन परिश्रम करने की अथक क्षमता, उत्कृष्ट बुद्धि, अलौकिक स्मरण शक्ति और विस्तृत विद्वता के कारण आशुतोष को भीमकाय माना जाता है। परंतु शारीरिक तौर पर वे भीमकाय बिलकुल भी नहीं थे। उनकी लम्बाई मध्यम थी, बदन गठीला और हृष्ट-पुष्ट और रंग सांवला था। परंतु उनका चेहरा-मोहरा विशिष्ट था जिससे भरी सभा मे भी उनकी मौजूदगी का पता चल जाता था। मोटी भौहों के नीचे दो चमकदार आंखें थी। वो आंखें इतनी पैनी लगती थी कि आपको लगता कि उन्होंने आपको देखते ही फौरन आपकी थाह ले ली। जब वे गुस्से में होते तो इन आंखों से आग बरसती थी और जब वे प्रसन्न होते तो उनमें अत्यधिक सहृदयता होती। गोल चेहरे पर मध्यम आकार की नाक के नीचे उनकी झुकी हुई मूंछें उनके दोनो होठो को ढक देती थी। उनको देखने से लगता था कि वे शारीरिक तौर पर तगड़े व्यक्ति है। परंतु वे बीमारी से बचे हुए नहीं थे। अपने छात्र-जीवन मे वे दुबले थे और गंभीर रूप से बीमार रह चुके थे। काम करने की ज़बर्दस्त उमंग के कारण वे हमेशा आराम की आवश्यकता के प्रति उदासीन रहे।

आशुतोष ने कभी भी युरोपीय पोशाक नहीं पहनी। वे सभी जगहों पर ऊपर तक बटन लगे कोट, धोती और जूतों मे दिखलाई पड़ते। उच्च न्यायालय मे जब वे पीठ पर बैठते तो पतलून पहनते थे परतु अपने कक्ष मे लौटते ही फौरन उसे उतार देते थे। दिन का काम समाप्त होने के बाद उन्हें धोती पहने उच्च न्यायालय में न्यायाधीशो की विशेष सीढ़ियो से उतरते देखा जा सकता था। जिस समय वे विद्यार्थी थे 'भद्रलोक' वर्ग मे चादर पहनने का रिवाज था। आशुतोष ने काफी कम आयु मे ही साथी विद्यार्थियो की खिल्लियों की परवाह न करते हुए चादर का उपयोग बंद कर दिया। एक बार जब वे अपनी बग्गी से उतर रहे थे तो उनका पांव

चादर मे फंस गया और वे लड़खड़ा कर गिर गये। इसके बाद से उन्होंने चादर पहनना छोड़ दिया। बाद मे अपने जीवनकाल मे वे चादर का उपयोग तो करते रहे पर उसे तह करके अपने बायें कंधे पर डाल लेते थे ।

परंपरानिष्ठ ब्राह्मण होने के कारण उनकी बहुत सादी आदतें थी। उन्हे नरम बिस्तर पसंद नही था और वे सख्त बिस्तर पर सोते थे। एक बार जब वे एक अमीर आदमी के अतिथि थे उन्हें आरामदेह बिस्तर पर नीद नही आई ओर वे फर्श पर ही सोए। उन्होंने न कभी धूम्रपान किया और न ही पान चबाया। उन्होंने कभी चाय नही पी। वो शाकाहारी थे। गभीर बीमारी के बाद एक बार उनके चिकित्सक के आग्रह पर उन्हें मछली खानी पड़ी पर उन्हें वह कभी पसंद नही आई। उन्हें संदेश बहुत अच्छा लगता था और वे प्रतिदिन काफी मात्रा में यह मिठाई खाया करते थे। दरअसल अपने जमाने में उनका नाम कलकत्ता के बोउबाज़ार के भीम नाग के मिष्टान भडार में बनाये गये संदेश के साथ जोड़ा जाता था।

आशुतोष ने नियमित जीवन बिताया। वे प्राय: चार बजे अपना बिस्तर छोड़ देते थे। साढ़े चार बजे तक वे अपना कार्य शुरू कर देते थे। कुछ समय तक काम करने के बाद वे प्रतिदिन सुबह की सैर के लिए कलकत्ता मैदान जाया करते थे। उनके पिता ने उन्हें स्वास्थ्य के लिए सुबह की हवा का महत्व बताया था और उनके विद्यार्थी जीवन के दिनों में पिता और पुत्र प्राय: सैर को जाया करते थे। यह आदत उनके अतिम दिनों तक बनी रही। वे मैदान की सड़क के समानांतर चौरंगी रोड तक से उस छोर से जिसे आजकल क्वीन्स वे कहते है, पार्क स्ट्रीट सुबह की सैर करते थे। यह सड़क आज भी एक ऐतिहासिक स्थान के तौर पर मौजूद है क्योंकि यहीं पर उन दिनों के बहुत से महत्त्वपूर्ण विषयो पर विशिष्ट व्यक्ति उनसे बातचीत करते थे और कम महत्त्व के लोग अपनी शिकायतें पेश करते थे।

घर लौटने पर वे कुछ समय अपनी प्रतीक्षा मे बैठे आगंतुको को देते और फिर कार्य प्रारंभ करते। आमतौर पर तीन स्टेनोग्राफर उनकी सेवा मे होते थे और वे उन्हें एक साथ निर्णय, रिपोर्ट, नोट और उनके भारी-पत्र-व्यवहार से संबंधित उत्तर लिखवाया करते थे। अपना कार्य समाप्त करने के बाद वे वापिस बैठक मे आ जाया करते और उन सभी वर्गों के मिलने वाले लोगो को दर्शन देते जो उनके पास बिना किसी रोक-टोक के आते थे। अब उनका स्नान का समय हो जाता और आगंतुको से उनकी बातचीत के दौरान ही उनके नौकर आते और उनके सिर और बदन पर तेल मलते। इसी अवस्था मे वे निस्सकोच यूरोपीय अधिकारियों का भी स्वागत करते।

दिन के समाप्त होने पर वे उच्च न्यायालय से सीधा विश्वविद्यालय जाते थे और अक्सर अध्यापकों के सामान्य कक्ष में उनकी प्रतीक्षा कर रहे विश्वविद्यालय के अध्यापकों के लिए भीम नाग से मिठाई ले जाते। वे विश्वविद्यालय की बैठकों के समाप्त होने के बाद संध्या को देर से घर लौटते थे, फिर खाना खाते और रात

को दस बजे अपने सोने के समय तक, काम किया करते। यही वह समय था जो वे अपने निजी अध्ययन में लगाते। इस प्रकार प्रातः चार बजे से रात दस बजे तक उनके जीवन का प्रत्येक क्षण काम में डूबा रहता।

आशुतोष को अपनी परंपरा मे गहरी आस्था थी और उन्होंने ईमानदारी से पश्चिमी तौर-तरीको को त्याग दिया। इसके बावजूद उनका मस्तिष्क पश्चिमी सस्कृति की श्रेष्ठतम विशेषताओ को स्वीकार करने के लिए तैयार रहता। वे अपनी मातृभूमि की परम्पराओं को तो नही छोड़ते पर धर्म के नाम पर हिन्दू समाज मे जो कुरीतियां आई, उन्हे कभी बर्दाश्त नहीं करते। आवश्यकता पड़ने पर वे हिन्दू समाज के रूढ़िवादी वर्ग को नाराज करते हुए डरते नही थे। उन्हे अपनी सबसे बड़ी बेटी से बहुत लगाव था जोकि बाल विधवा थी और उन्होने रूढ़िवादी ब्राह्मणों के कड़े विरोध के बावजूद उसकी दूसरी शादी की। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने स्पष्ट कर दिया था कि प्राचीन हिन्दू धर्मग्रंथों में नि:संतान विधवाओं के पुनर्विवाह की अनुमति थी। विद्यासागर ने अपने बेटे की एक विधवा के साथ शादी तय कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया था। आशुतोष ने, जो उनके हार्दिक प्रशसक थे, जबर्दस्त विरोध के बावजूद उनका अनुसरण किया।

पश्चिमी तौर-तरीकों और पोशाक को अस्वीकार करना उनकी राष्ट्रीयता की भावना का सूचक था। वे अपने देशवासियों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते थे, उनमे स्वतंत्रता की भावना पैदा करना चाहते थे और उन्हे अपने आपको श्वेत नस्ल के लोगों के बराबर मानने का सबक सिखाना चाहते थे। वे उतने ही देशभक्त थे जितना कि कोई भी राजनीतिक नेता था। विश्वविद्यालय के 1907 के दीक्षांत समारोह मे अपने देश के युवाओं को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा, "पश्चिम के रीति-रिवाजो मे ओत-प्रोत होने के बावजूद भारतीय चिंतन में जो कुछ भी उत्कृष्ट है और भारतीय रीतियों और प्रथाओ में जो कुछ भी सर्वोत्तम है, उसकी अवहेलना न करें। पश्चिमी सस्कृति की सर्वोच्च विशेषताओं की उचित प्रशसा करते हुए किसी भी परिस्थिति में अपने आपको राष्ट्रीयता से वंचित न करें। किसी भी समय इस बात को स्वीकार करते हुए संकोच न करें कि आप विशुद्ध भारतीय हैं और पोशाक और पसंद के तुच्छ और झूठे अभिमान से सदैव ऊपर उठना न भूलें। सर्वाधिक आवश्यक यह है कि आप परिश्रम के साथ अपनी देशी भाषाओं को आगे बढायें क्योंकि केवल देशी भाषाओं के माध्यम से ही आप अपने बहुसंख्यक देशवासियों तक पहुंचने की आशा कर सकते हैं और यूरोपीय विद्या के क्षेत्र से आपने जो खजाना जुटाया है, उसका, उन तक प्रसार कर सकते हैं'। "निम्नलिखित घटना से स्वतत्रता की उनकी भावना का उदाहरण मिलता है। उन्हें लार्ड कर्जन द्वारा एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक मे कलकत्ता के प्रतिनिधि के तौर पर शामिल होने के लिए लंदन जाने को निमंत्रित किया गया। निस्संदेह यह बहुत बड़ा सम्मान था।

आशुतोष ने उन्हें बताया कि वे जा नहीं सकेंगे क्योंकि उनकी मां उन्हें अनुमति नहीं दे रही थी। बताया जाता है कि लार्ड कर्जन ने उनसे अपनी मां को यह कहने को कहा कि भारत में सम्राट के प्रतिनिधि की आज्ञा के अनुसार उन्हें जाना ही पड़ेगा। इस पर आशुतोष ने कहा कि उनकी मां इसके उत्तर में यह कहेंगी कि उनके अलावा उनके बेटे को आज्ञा देने का किसी को भी अधिकार नहीं है।

उन दिनों बहुत से यूरोपीय भारतीयों के साथ अक्खड़पन का व्यवहार करते थे। रेल में यात्रा के दौरान अक्सर युरोपीयों और भारतीयों के बीच झगड़े के मौके आते और आमतौर पर इनमें यूरोपीय भारी पड़ते। आशुतोष को एक बार अपनी रेल-यात्रा के दौरान सेना के एक ब्रिटिश अफसर को सबक सिखाने का अवसर प्राप्त हुआ। आशुतोष तब सैंडलर आयोग के सदस्य थे। वे आयोग के सदस्य के नाते अपने काम के सिलसिले में अलीगढ़ गये थे। अलीगढ़ से वापसी यात्रा के दौरान सेना का एक ब्रिटिश अफसर उनके डब्बे में सहयात्री था। आशुतोष जब ऊंघते-ऊंघते सो गये तो सेना के अफसर ने उनकी नई खरीदी हुई 'नागड़ा' चप्पलें खिडकी से बाहर फेंक दीं। जागने के बाद जब आशुतोष ने पाया कि उनकी चप्पलें गायब हो गई है तो वे जो हुआ उसे भाप गये और सेना के अफसर की कोट खिड़की से बाहर फेंक दी। उस समय अफसर सो रहा था। जागने पर अपने कोट को गायब पाने पर उसने कोहराम मचा दिया। आशुतोष ने शांति से उन्हे बताया कि उनका कोट चप्पलों को लाने गया है।

आशुतोष का हृदय बहुत कोमल था और एक ऐसी अदालत की तरह था जहां कठिनाइयों से घिरे सभी लोग अपनी प्रार्थनाएं लेकर जाते थे। उन तक पहुंचना बहुत आसान था और प्रतिदिन वे बिना किसी परिचय के अलग-अलग जीवन-धाराओं के बड़े-छोटे बहुत से लोगों से मिलते, उनकी प्रार्थनाएं सुनते और जो कुछ करना संभव था उनके लिए करते।

वे खूबियों को शीघ्र ही पहचान लेते थे और सदैव ही योग्य लोगों को प्रोत्साहित करते थे। वे प्रतिभाशाली छात्रों की प्रगति पर, बिना उन्हे पता लगने दिये, नजर रखते थे। ऐसे बहुत से छात्रों को उनके जीवन का सबसे बड़ा आश्चर्य उस समय होता था जब वो पहली बार उनसे मिलते और यह पाते कि आशुतोष को उनकी शैक्षिक प्रगति का विवरण जबानी याद है। ऐसे नवयुवकों को आशुतोष अपने विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभागों में अध्यापन के लिए चुन लेते थे। आशुतोष से प्राप्त होने वाले निरंतर प्रोत्साहन के कारण वे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वानों के रूप में उभरते थे। विश्वविद्यालय के अध्यापक और कर्मचारी वर्गों पर वे जो ज़बर्दस्त व्यक्तिगत प्रभाव रखते थे वो केवल उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार के कारण ही था।

आशुतोष व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। परंतु इसके साथ-साथ वे स्वप्नदृष्टा भी

थे। कई मौकों पर देखा गया कि वे बिलकुल मौन हो जाते और उनकी आंखें दूर कहीं खोई हुई लगती। स्पष्ट है कि वे अपने प्रिय विश्वविद्यालय के विश्व के सभी विश्वविद्यालयों की रानी बनने के स्वप्न देखते थे, एक आधुनिक नालंदा का स्वप्न, जहां दुनिया भर के विद्वान मानव ज्ञान की सीमाओं को बढ़ाने के सामान्य उद्देश्य को लेकर आपस में मिलते। 1914 में विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा, "विश्वविद्यालय की कुशलता को शीर्ष तक पहुंचाने की योजनाएं और तरीके मेरे उन दिवा-स्वप्नों का विषय रहे है जिसमें एक व्यस्त मनुष्य भी समय-समय पर खो जाता है, रात को आराम करने के समय यह बातें मेरे मन में आती रही हैं।" आशुतोष के बारे में आई० जे० एस० तारापोरवाला ने लिखा, "उनकी कल्पना का स्तर महान व्यावहारिक क्षमता से जितना भरपूर था वह कम ही देखने में आता है। जब उन्होंने अपने प्यारे भारत के विषय में, उसके भूत और भविष्य के विषय मे बात करना शुरू किया तो उनके शब्दो में वो जोश था जो एक कवि और एक पैगम्बर के शब्दों मे होता है। इस बात में उन्हें कभी भी संदेह नही रहा कि निकट भविष्य में भारत एक महान देश बन जायेगा। वे उसकी महानता के ऐसे सपने देखने का साहस करते थे जैसाकि बहुत कम लोगों ने किया है। इन सपनों को उन्होंने उस समय भी देखा जब वे पूरी तरह जागृत अवस्था मे होते थे। उनके शरीर की प्रत्येक सांस इस स्वप्न से प्रेरित थी, उनका प्रत्येक कार्य इन स्वप्नो को हमारे दैनिक जीवन के भौतिक स्तर पर लाने के उद्देश्य से प्रेरित था।''

आशुतोष का यह विश्वास था कि मनुष्य अपने आप कुछ नहीं कर सकता है और विधाता ही संसार की विभिन्न गतिविधियों को निर्धारित करता है। एक बार, जब उनके एक मित्र गभीर रूप से बीमार थे और जीवन और मृत्यु के बीच झूल रहे थे तथा डाक्टरों के अनुसार उनका अंतिम समय आ ही गया था, तब उन्होने कहा, "डाक्टर क्या जानते है और क्या कर सकते है ? सब कुछ ईश्वर के हाथों मे होता है।" इसी विश्वास ने, कि विधाता जो चाहेगा वही होगा, कलकत्ता विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय के उच्चतम आदर्श केसमानुरूप बनाने के लिए चलाये गये संघर्ष में उन्हें लगाये रखा। कलकत्ता विश्वविद्यालय की सिनेट के सम्मुख 8 दिसम्बर, 1922 को उस समय जबकि विश्वविद्यालय एक संकट का सामना कर रहा था अपने भाषण में उन्होंने कहा, "मेरे मित्रों, एक क्षण लिए के भी यह न सोचें कि विधाता नाम की कोई चीज नही है। यदि विज्ञान या दर्शन ने आपको यही सिखाया है तो इस भारी भूल को सुधारिए। यदि विधाता की यही इच्छा है कि बंगाल से उच्च शिक्षा लुप्त हो जाये तो उसकी मर्जी को पूरा होने दीजिए। परतु मेरा विधाता मे अटल विश्वास है, विपत्ति और संकटों के क्षणों मे यही मेरी एकमात्र प्रेरणा रही है।"

आशुतोष को विश्वविद्यालय में अपने कार्य में बहुत विरोध का सामना करना पड़ा था। उनकी निंदा करने वालों ने उन्हें अहकारी और तानाशाह कहा। यह सही नहीं है। वे लोगों के स्वतंत्र रूप से विचार करने की शक्ति को प्रोत्साहित करते थे और ठोस तर्कों को सुनने के लिए हमेशा ही तैयार रहते थे। परंतु मूर्खता से भरी दलीलें देने वाले लोगो के लिए उनके पास धैर्य नहीं था। और अक्सर ऐसे लोगो को उनकी फटकार सुननी पड़ती थी। भूपेन्द्रनाथ बसु ने, जो 1923 में आशुतोष के बाद उनके द्वारा लिटन के अपमानजनक प्रस्ताव के अस्वीकार करने पर कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति बने, आशुतोष का 'एक उदार विरोधी ईमानदार मित्र' के रूप में वर्णन किया। उन्होंने कहा, "मैंने जबर्दस्त घबराहट के साथ अपने पद का कार्य प्रारभ किया, परन्तु शीघ्र ही मैंने पाया कि आशुतोष को विभिन्न विषयों पर ऐसा रुख अपनाने को आसानी से राजी किया जा सकता है जो उनके विचारों से अलग होते हुए भी ऐसा होता है जिसके पक्ष में लोग सोच सकते थे।" लार्ड कारमाइकल ने भी यही विचार व्यक्त करते हुए कहा कि, "यद्यपि आशुतोष से कोई बात मनवाना कठिन है लेकिन फिर भी उनकी धारणाओं को प्रभावित किया जा सकता है।"

उनकी नीतियों के खिलाफ उन दिनों कुछ अखबारों में जो आलोचना छपी थी वह विश्वविद्यालय के अर्थ से अनजान होने और आशुतोष द्वारा किये जा रहे कार्यों की सही जानकारी न होने के कारण थी। आशुतोष चुपचाप ऐसी आलोचना की अवहेलना करते थे। आशुतोष के सामने एक स्पष्ट लक्ष्य था। वे जानते थे कि वे एक बेहतर और अधिक महान भारत का निर्माण कर रहे थे। अतः अपने श्रेष्ठ ज्ञान और ज़बर्दस्त तर्क-शक्ति की सहायता से सभी तरह के विरोध का मुकाबला करना उनके लिए सहज था। इस संदर्भ मे सर आशुतोष की मृत्यु के बाद उनके बारे में सर माइकल सैडलर के कथन को उद्धृत करना अत्यंत प्रासंगिक होगा। उन्होने लिखा, "सर आशुतोष मुकर्जी की मृत्यु में भारत ने अपने महानतम सपूतो में से एक और विश्व ने सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्तित्वों में से एक व्यक्तित्व खो दिया है। वे संग्राम मे शक्तिशाली थी। वे एक पूरे साम्राज्य पर शासन कर सकते थे। परंतु उन्होंने अपनी श्रेष्ठतम शक्तियां शिक्षा के क्षेत्र को दी क्योंकि उनका विश्वास था कि सही तरह से प्रतिपादित शिक्षा में ही मानव कल्याण का रहस्य और प्रत्येक साम्राज्य के नैतिक शक्ति की कुंजी पाई जाती है।

"वे श्री गोखले के, जोकि नवयुवकों के एक अन्य मार्गदर्शन और शिक्षा के सेवक थे, मानसिक उत्तराधिकारी थे। लेकिन शारीरिक ताकत और नैतिक साहस दोनों ही मामलों में जिस व्यक्ति से उनकी ज्यादा वास्तविक समरूपता थी, वे थे अमरीकी, देशभक्त बुकर वाशिंगटन।

"सर आशुतोष को 'बंगाल का बाघ' कहा जाता था। यह नाम सही नहीं था।

यदि उनकी किसी उदार पशु के साथ तुलना की जा सकती है तो वह है ब्रिटेन का बुलडाग। उनमे मित्रो के प्रति निश्चित रूप से बुलडाग जैसी वफादारी थी, वे बुलडाग जैसे सवेदनशील थे और उनमें वैसा ही लोहे जैसा दृढ़ संकल्प था।

"वे अत्यंत विनोदी स्वभाव के थे और उनकी हँसी ऐसी थी जो याद रह जाती थी।—किसी तर्क मे प्रत्येक मुद्दे को समझने की उनकी तत्परता का कारण था उनकी तत्काल किसी भी बात की तह तक पहुंच जाने की शक्ति। वे साहसी थे और मानसिक तौर पर स्वतंत्र थे। वे किसी भी व्यक्ति के दबाव में नही आते थे।

"सर आशुतोष मे भारतीय परंपरा और पश्चिमी सस्कृति का सगम था। उनके चरित्र का आधार राजनीतिक नहीं बल्कि धार्मिक था। घर के लिए उनकी कोमलता, अपनी माता की स्मरणशक्ति के प्रति उनका सम्मान और परिवार के प्रति उनका स्नेह उनके प्रकृति की गहराई और उनके अंदर बसी हुई पवित्रता से उत्पन्न हुई थी। स्वयं धर्मपारायण हिन्दू होते हुए भी वे अन्य धर्मो के आदर्शों और स्त्रियों और पुरुषों के पूजन का आदर करते थे। वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिन तक पहुंचा जा सकता है और जो बाहो के पास ही होते थे।"[1]

1. कैलकटा रिव्यू, जुलाई 1924।

10

एक पुस्तक प्रेमी

सर आशुतोष से संबंधित कोई भी वृत्तांत तब तक अधूरा ही रहेगा जब तक उनके विशाल पुस्तक संग्रह की चर्चा न की जाये। उनके पुस्तकालय को, जिसमें 72 हज़ार पुस्तकें थीं, उनके पुत्रों ने कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय को भेंट कर दिया है और अब वह राष्ट्र की सम्पत्ति है। आशुतोष के पिता डा. गंगाप्रसाद मुकर्जी की तरह-तरह की रुचियां थीं और उन्होंने एक पुस्तकालय बना लिया था। बचपन से ही आशुतोष का पालन-पोषण पुस्तकों के बीच हुआ। स्कूल के दिनों से ही ज्ञान के लिए आशुतोष की पिपासा ने उन्हें पुस्तकों में तल्लीन हो जाने की प्रेरणा दी। उनके पिता ने उन्हें प्रोत्साहित किया और उनके मस्तिष्क के लिए आवश्यक भोजन की व्यवस्था में कोई कसर नहीं रखी। गणित मे आशुतोष की प्रमुख रूचि होने के कारण डा. गंगाप्रसाद ने उनके लिए गणित की पुस्तकों और पत्रिकाओं का उत्कृष्ट संग्रह खरीदा। अपने छात्र-जीवन से ही आशुतोष अपने ही पैसों से अपने पिता द्वारा प्रदान किये गये इस पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या में वृद्धि करना शुरू कर दिया। उनकी छात्रवृत्ति का प्रत्येक रुपया पुस्तकों की खरीद में खर्च किया गया। उन्होंने अपने समूचे छात्रजीवन के दौरान छात्रवृत्तियो प्राप्त कीं इसलिए कुल राशि का खर्च उपक्षेणीय नही था। बाद मे भी उन्होंने अपनी आमदनी का एक बड़ा भाग पुस्तकों की खरीद में व्यय किया।

उनके पुस्तकालय की अधिकांश पुस्तकें दुर्लभ और अप्राप्य हैं। इन दुर्लभ पुस्तकों को कलकत्ता में किताबों की पुरानी दुकानों से, निजी संग्रहालयों द्वारा बिक्री से और यूरोप और अमरीका के उन प्रकाशकों और पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्त किया था जिनको आशुतोष ने स्थायी तौर पर आदेश दे रखे थे।

आशुतोष को सीमित सस्करण वाली पुस्तकों से विशेष प्रेम था और उनके संग्रह

मे लगभग एक हज़ार पुस्तके ऐसी ही थीं। इनमें से अधिकांश पुस्तकें युरोपीय साहित्य से सबधित है। पिछली सदी और चालू सदी के आरंभ मे प्रकाशक अपने ग्राहकों के लिए आमतौर से पुस्तकों के सीमित सस्करण छापा करते थे। सीमित संख्या ही प्रतिया छापी जाती थी और इसके तुरत बाद प्रेस छापे की टाइपो को अन्य कार्यों में बांट देता था। हाथ से बने कागज पर छापे जाने और मछलियो की झिल्ली जैसी सामग्री का उपयोग किये जाने के कारण यह पुस्तकें साधारणतया बहुत महगी होती थी। इनमे से बहुत-सी पुस्तकें ऐसी थी जिनमे चित्रांकन और सजावट हाथों द्वारा की जाती थी। आशुतोष द्वारा जुटाई गई ऐसी कुछ ही पुस्तकों का यहां उल्लेख किया जा सकता है। रावर्ट ब्राउनिग की 'द फ्लाइट आफ द डचेस' 1905 में प्रकाशित की गई थी। केवल 125 प्रतियो का प्रकाशन मछली की झिल्ली पर किया गया था और आशुतोष की प्रति की संख्या 15 थी। आशुतोष के पुस्त-कालय मे गोटीज की 'किग केन्डोलस' (1898), फ्लाबेयर की 'सिम्पल हार्ट' (1898) और लान्गस की प्रसिद्ध कथा 'डेफनिस एण्ड क्लो' (1898) की एक प्रति, चुनिन्दा संस्करणो में इनमे से प्रत्येक की प्रति संख्या 13 है और इन पर—'माननीय डा. आशुतोष मुखोपाध्याय के लिए मुद्रित'—यह उक्ति अंकित है। उनके संग्रह मे ऐसी अन्य अद्वितीय पुस्तकें है, डोवर प्रेस की 'द इंगलिश बाइबल' जिसे 'अब तक बनी सबसे अधिक कुलीन मुद्रित पुस्तकों में एक' कहा गया ; 'द बुक ऑफ कामन प्रेयर 'जो हाथ से बने कागज पर छपी है और चमड़े की पीठ तथा बलूत के जिल्दों में बंधी है और जिसकी जिल्द के दोनो तरफ की पकड़ के लिए बकसुए लगे है ; गेटे की 'फाउस्ट' (1874) का मूल जर्मन चरित्र संस्करण जोकि जिल्दबाजों और सजावट की दृष्टि से उल्लेखनीय है ; विलियम शेक्सपीयर (1893) की रचनाओं के आठ सग्रह जिसमे 1243 चित्र अंकित है और बॉयडेल 'इलस्ट्रेशन्स आफ द ड्रेमेटिक वर्क्स आफ शेक्सपीयर' (1852) के अमरीकी सस्करण के दो मोटे ग्रंथ जिसमे विख्यात अंग्रेज कलाकारों द्वारा बनाये गये चित्र है। सीमित संस्करणों के अंतर्गत चित्रों से विशेष रूप से सज्जित और मुद्रित तथा बढ़िया जिल्दो मे बधी शेक्सपीयर के नाटकों अलग-अलग संस्करण भी संग्रह में हैं। सिडनी ली की प्रस्तावना के साथ शेक्सपीयर के नाटकों से संबंधित 'प्रथम पुस्तक' की अनुलिपि 1902 में प्रकाशित हुई। यह 1000 प्रतियों का सीमित संस्करण था। आशुतोष की प्रति की संख्या 421 है। 1688 मे प्रकाशित मिल्टन के 'पेराडाइस लास्ट' का प्रथम संस्करण, 1794-97 मे (तीन खडो में) प्रकाशित मिल्टन की काव्यात्मक रचनाओं का संस्करण, जान रस्किन का 39 खंडों में प्रकाशित पुस्तकालय सस्करण और 11 खंडों वाला सैम्युअल जॉनसन की रचनाओं का ऑक्सफोर्ड संस्करण भी उनके पुस्तकालय में है।

प्रकाशन की तिथि की दृष्टि से दुर्लभ पुस्तकों मे—चित्रों और व्याख्या सहित 'ईप्स फेबल्स' का प्रथम संस्करण, 1688, यूक्लिड की 'एलीमेंट्स आफ ज्योमेट्री'

जिसे अंग्रेजी मे पहली बार एच. बिलिंग्सली ने अनूदित किया और लंदन के जॉन डेई ने (1570) छापा, 'आरेशन्स आफ डेमोस्थेनीज' जिसे 1599 में यूनानी और लातिनी भाषाओं में आमने-सामने के पृष्ठों पर छापा गया, फोर्टस्क्यू की 'लॉज ऑफ इंगलैंड' (1573) जिसे अंग्रेजी और लातिनी में आमने-सामने के कालमों में छापा गया, सैम्युअल जॉनसन की 'डिक्शनरी आफ इंगिलश लैंगवेज' (1755) का पहला संस्करण; लंदन के भाषाओं प्रोफेसर जान मिनीश्यू का फ्रांसीसी शब्दकोष (1599) और 1616 में मुद्रित टॉमस कोरीएट की मुगल दरबार के वृत्तांत से संबंधित पुस्तक भी शामिल हैं।

सर वॉल्टर स्कॉट, डैनियल डीफो, चार्ल्स डिकन्स, जॉर्ज इलियट, रूडयार्ड किपलिंग, रॉबर्ट लुई स्टीफेंसन, डब्ल्यू. एम. ठेकरे, चार्ल्स और मेरी लैम्ब और अन्य लेखकों की रचनाओं के बड़े-बड़े सैट भी उनके संग्रह की शोभा है। अमरीकी साहित्य के वर्ग का प्रतिनिधित्व एच. डब्ल्यू. लांगफैलो, ई. ए. पी. वाल्ट विटमैन, नेथैनियल हॉथोर्न, हेनरी जेम्स, आर. डब्ल्यू एमरसन और वाशिंगटन अर्विंग करते हैं।

संग्रह में अन्य भाषाओं की चिरप्रतिष्ठित पुस्तकें भी पाई जा सकती है। फाउस्ट के अलावा गेटे की रचनाए 14 खंडो में उपलब्ध है। मोलियेर, बाल्जाक, गॉतियेर, फलावेयर और वाल्टेयर की रचनाएं भी प्राप्य हैं। ऐसा लगता है कि आशुतोष को डॉन क्विहोटे के अपूर्व अनुभवों से विशेष लगाव था। उन्होंने 1905 में प्रकाशित स्पेनिश भाषा की इस प्रतिष्ठित पुस्तक के प्रथम संस्करण (1605) की पुनर्मुद्रित प्रति की अनुलिपि प्राप्त की। इस संग्रह मे अंग्रेजी और फ्रांसीसी भाषाओं में डॉन क्विहोटे के अपूर्व अनुभवो के 20 से अधिक अनुवाद है। पुस्तकालय में सभी यूनानी और लातिनी लेखकों का प्रतिनिधित्व है। ओविड, वर्जिल, सिसरो, लेवी की रचनाएं, ईशयलस, सोफोक्लीज और यूरीपीड्स की दुखांत रचनाएं और एरोस्टोफीनीज की हास्य रचनाएं भी इस संग्रह में हैं। होमर की रचनाओं के विभिन्न संस्करण, थूसाइडाइड्स की कृतिया, प्लेटो के संवाद, अरस्तू की सैद्धांतिकी और राजनीति और प्लूटार्क की 'लाइव्स' भी संग्रह में शामिल है।

आशुतोष के संग्रह में पूर्वदेशीय प्रतिष्ठित पुस्तकों का खासा प्रतिनिधित्व है। मैक्स म्यूलर द्वारा संपादित 'द सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट' और रामायण के अलग-अलग संस्करण उनके पुस्तकालय में उपलब्ध है। सार्डीनीया के राजा चार्ल्स एलबर्ट के खर्च पर प्रकाशित गोरेजियो की रामायण का दस खंडों वाला सस्करण शानदार है। विलियम केरी और जोशुआ मार्शमेन ने अंग्रेजी मे गद्य अनुवाद और व्याख्यात्मक टीका के साथ रामायण के संस्कृत मूल के संपादन की परियोजना का भार उठाया था। इस परियोजना के अंतर्गत केवल दो खंड प्रकाशित हुए और इन्हें आशुतोष ने हासिल किया। वेद, पुराण, उपनिषद और व्याख्याओं के साथ सस्कृत साहित्य की

सभी उच्च स्तर की रचनाएं उनके पुस्तक संग्रह में हैं। आशुतोष ने मेटलिक का सात खंडों का संस्कृत शब्दकोष और राधाकांत देव का 'शब्दकल्पद्रुम' भी खरीदा था। संग्रह में काल्हना की 'रजतरंगिनी' (1840) का एक दुर्लभ संस्करण भी है जिसमें संस्कृत मूल के साथ-साथ फ्रांसीसी अनुवाद भी है।

आशुतोष ने उमर खैय्याम का रूबाइयो के तीस से अधिक सस्करण इकट्ठा किये। इनमें से अधिकांश सचित्र एवं सीमित संस्करण है जिनमें कलाकारो ने स्वयं हस्ताक्षर किये हैं। एक प्रति अबनीन्द्रनाथ ठाकुर के चित्रों से सज्जित है।' अरेबियन नाइट्स' के भी अनेक संस्करण इस सग्रह मे है जिसमें मेजर टर्नर मेकान द्वारा, मिस्र से भारत लायी गयी पाण्डुलिपि पर आधारित व डब्ल्यू एच. मैकनेगटन द्वारा संपादित कलकत्ता संस्करण सबसे महत्त्वपूर्ण है। चार खंडो मे पुस्तक के इस संस्करण को कलकत्ता के डब्लू. ठैकर एण्ड कम्पनी द्वारा 1839-42 में प्रकाशित किया गया।

शिक्षा, राजनीति विज्ञान, इतिहास और मानव विज्ञान पर बहुत-सी पुस्तके हैं और कानून संबंधी पुस्तकों की तरह वे इनका भी निरंतर उपयोग करते रहते थे। उनके संग्रह में कन्फ्यूशियस, कांत, हॉब्स, वॉल्टेयर और एमरसन की कृतियां भी उपलब्ध हैं। वेदों, हिन्दू शास्त्रो, बाइबिल और कुरान के विभिन्न संस्करण और बौद्ध धर्म पर भी पुस्तके इस संग्रह में प्राप्य है।

पुस्तकालय सफरनामो मे समृद्ध है। इनमें हाकल्युत सोसाइटी द्वारा प्रकाशित 180 ग्रंथ और 100 प्रतियो वाले सीमित सस्करण में पुर्चाज की 'पिलग्रिम्ज' भी शामिल है। आशुतोष ने अपने पुस्तकालय के लिए ह्वेन सांग और फा-हियान के वृत्तांत भी हासिल किये। बुकानन की 'ए जर्नी फ्रॉम मद्रास' आदि और रैनेल की 'मेमुआज आफ ए मैप ऑफ हिन्दुस्तान' (1792 संस्करण) तथा 'मेमुआज ऑफ एक मैप ऑफ द पेनिनसुला ऑफ इंडिया (1793) को भी सग्रह में स्थान दिया गया।

गणित के विषय पर आशुतोष के संग्रह में जो पुस्तकें है उनमें शामिल है— 'कलेक्टेड मैथेमेटिकल पेपर्स आफ आर्थर केली' के 13 खंडो वाला सैट, 'द कलेक्टेड मैथेमेटिकल पेपर्स आफ जे. जे. सिल्वेस्टर', 'द साइंटिफिक पेपर्स आफ जे. सी. एडम्म 'और खूबसूरत हरे चमड़े की जिल्द में चार खंडो मे 'मेकानीक सेलेस्त'। 1570 में प्रकाशित यूक्लिड की 'ज्योमेट्री' के पहले अंग्रेजी अनुवाद के बारे मे ऊपर बताया जा चुका है।

वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला और संगीत आदि पर पुस्तकों की संख्या लगभग 1000 है। इनमें राजगिरि, बादामी और कोणार्क फोटो संग्रह, 1896-97 में प्रकाशित जॉर्ज ग्रिफिथ की 'द पेंटिंग्स इन द बुद्धिस्ट केव टेम्पल्स ऑफ अजंता',

'इंडियन जिवेलरी' व 'इंडियन सिल्क' से सबंधित ग्रंथ और सीमित संस्करण में सी. आर. डे. की 'द म्यूजिक एण्ड म्यूज़िकल इंस्ट्रूमेंट्स ऑफ सदर्न इंडिया एण्ड द डेक्कन' (1891) की एक प्रति का विशेष उल्लेख किया जा सकता है।

अट्ठारहवीं और उन्नीसवी शताब्दी में भारत की यात्रा पर आये यूरोपीय कलकारों की कृतियो का उल्लेख करना भी आवश्यक है जिन्हें इस संग्रह मे देखा जा सकता है। विलियम होजेस की 'व्यूज़ इन इंडिया' की हाथ से रंगीन प्रति, टामस डेनियल की 'ओरियंटल सीनरी' के मोटे खंड, सोल्विनज की 'ले हिन्दू' जिसमें हिन्दुओं के व्यवसायों, त्यौहारों और पोशाको को चित्रित किया गया है और श्रीमती बेलनोज़ की 'द संध्या ऑर द डेली प्रेयर्स ऑफ द ब्राम्हिंस' जैसी पुस्तकों ने संग्रह को समृद्ध किया है। ललित कला के लिए आशुतोष के प्रेम ने उन्हें यूरोपीय घरानों के लगभग सभी जाने-माने कलाकारों के चित्रो के संग्रह खरीदने को प्रेरित किया।

जैसीकि अपेक्षा की जा सकती है, कानून शास्त्र से संबंधित भाग विशेष रूप से समृद्ध है। लगभग सभी जानी-मानी कानून धारावाहियां उपलब्ध है। अंग्रेज़ी कानून धारावाहियों में अट्ठारहवी और उन्नीसवी शताब्दि से सबंधित ऐडमिरालिटी, चांसरी, एक्सचेकर, किंग्ज बेंच और क्वीन्ज़ बेच आदि के कानूनी रिपोर्ट है। दिवालियापन, सामान्य अभिवचन और हाउस आफ लार्ड्स के अपील के मुकदमों की रिपोर्ट विशेष उल्लेखनीय है। उनके पुस्तकालय में संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा और सिलोन के कानूनी रिपोर्ट भी सम्मिलित है।

जैसे-जैसे उनके पुस्तकालय मे पुस्तको की संख्या बढती गई, उन्हे रखने के लिए आशुतोष को अपने घर में एक के बाद एक कमरे जोड़ने पड़े। इसके बावजूद उस बड़े से घर मे प्रत्येक कमरे मे फर्श से छत तक, गलियारों मे और यहां तक कि सीढ़ियों के नीचे भी सभी स्थानों पर पुस्तके ही पुस्तके थी। बहुत सारी पुस्तको को संथाल परगना मे मधुपुर मे उनके मकान मे रखा गया था। पुस्तको से धूल झाड़ने के लिए नियमित कर्मचारी रखे जाते थे और पुस्तकों की उनके निर्देशन के अनुसार जिल्दसाजी करने के लिए भी अलग व्यवस्था थी।

आशुतोष ने पुस्तकों की सूची तैयार करवाने का कोई प्रयत्न नही किया। पुस्तके उन्हीं के उपयोग के लिए थीं और उन्हे सही-सही पता था कि कौन-सी पुस्तक कहां है। जिस किसी भी पुस्तक को वे देखना चाहते थे उसे वे बिना किसी कठिनाई के ढूंढ सकते थे।

बहुत-सी पुस्तकों मे आशुतोष के हस्ताक्षर और खरीदने की तिथि और कीमत अंकित है और बहुत-सी ऐसी है जिनके किनारों पर उनकी टिप्पणियां है। दुर्लभ पुस्तकों पर उन्होंने 'दुर्लभ', 'अति दुर्लभ' और 'एकमात्र' लिखा हुआ है।

यह जान लेना आवश्यक है कि आशुतोष पुस्तको का मात्र संग्रह ही नही किया

करते थे। वे एक बहुमुखी प्रतिभा वाले विद्वान् थे। पुस्तकें उनकी स्थायी साथी थीं। उनकी कभी न बुझने वाली ज्ञान पिपासा के लिए वो आवश्यक थीं। अलग-अलग क्षेत्रों मे उनकी दिलचस्पी का प्रमाण यह है उन्होंने लगभग सभी विषयों पर पुस्तकें इकट्ठा की। यह बिलकुल सही और उचित है कि ज्ञान के मंदिर के प्रमुख भक्त के पास अपनी उपासना के लिए यह सारी सामग्री उपलब्ध हो।

ताज प्रिन्टर्स–69 नजफगढ़ रोड, इंडस्ट्रियल एरिया. नई दिल्ली द्वारा मुद्रित